सोमसी

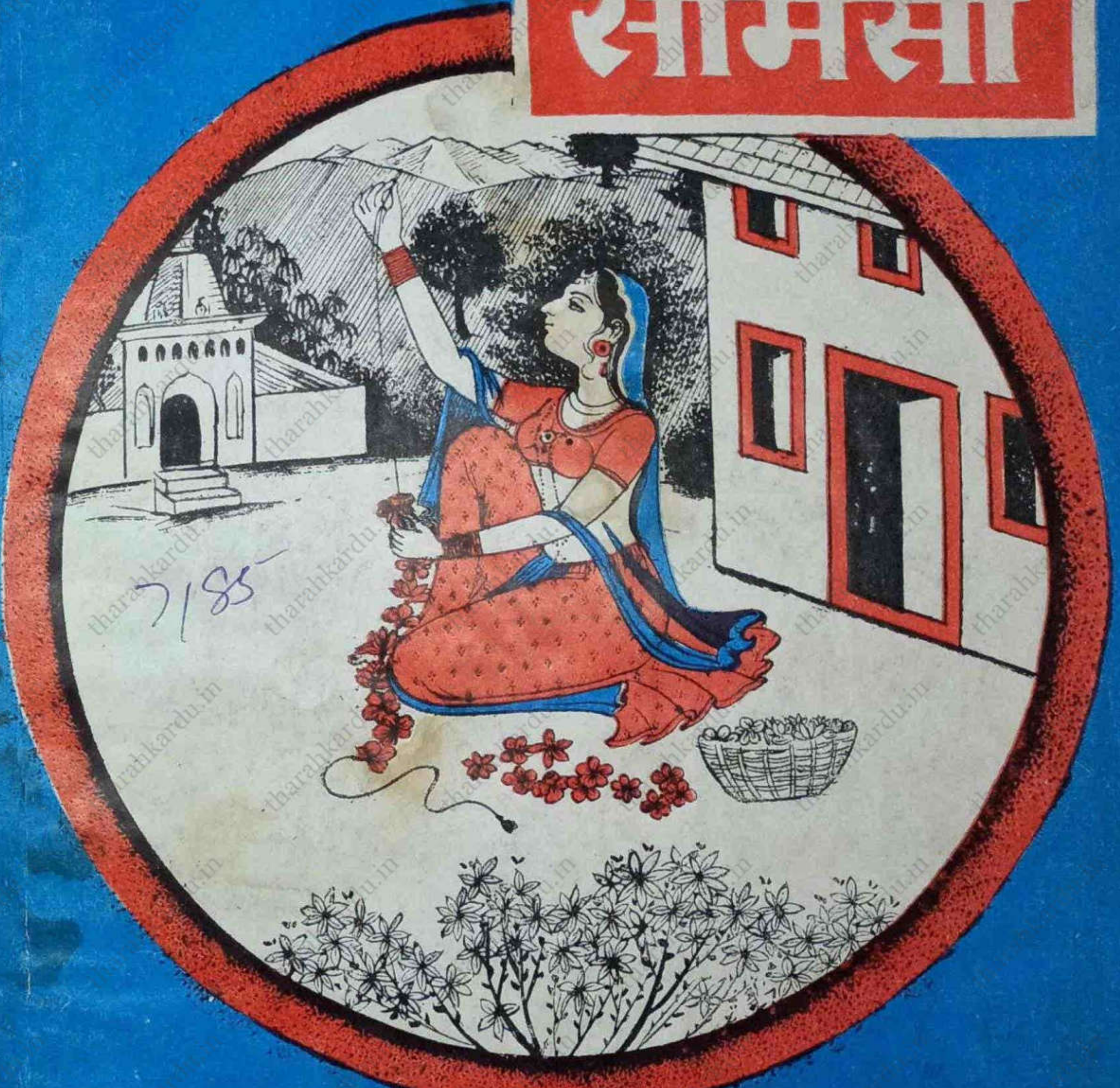

वर्ष 11

अंक 3

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी शिमला-१

सोमसी

हिमाचल कला संस्कृति और भाषा अकादमी
की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष 11 | जुलाई 1985 | अंक 3

मुख्य सम्पादक
वीरभद्र सिंह
अध्यक्ष अकादमी

उप मुख्य सम्पादक
सागर चन्द्र नैयर
वरिष्ठ उपाध्यक्ष अकादमी

संरक्षक
एम०आर० ठाकुर

सम्पादक
रमाकान्त जोशी

सहयोग
गिरिजा शर्मा

आवरण
ओम सुजानपुरी

43

जनवरी, अप्रैल,
जुलाई व अक्तूबर
में प्रकाश्य

लेखक द्वारा दिए गए तथ्यों तथा विचारों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं ।

वार्षिक चन्दा 12 रुपए

एक प्रति 3 रुपए

हिमाचल कला संस्कृति और भाषा अकादमी
क्लिफ़ एण्ड एस्टेट, शिमला-171 001

सोमसी जुलाई 1985

इस अंक में

क्रमांङ्क	लेख का नाम	लेखक	पृष्ठ संख्या
	हिन्दी अनुभाग		
1.	वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास	प्रेम लाल गौतम आचार्य	1
2	कांगड़ा और उसके देवस्थान	पृथुराम शास्त्री	10
3.	हिमाचल के सिरमौर जनपद में देवीपूजा	रत्न चन्द शर्मा	15
4.	शोध प्रबन्ध का सार संक्षेप	डा० कोमल कुमार कोहली	20
5.	हिन्दी शोध	डा० जोगेश कौर	25
6.	विधि माता और हिमाचल प्रदेश	अमृत कुमार शर्मा	34
7.	कांगड़ी बोली में नकारात्मक प्रक्रिया	मधुबाला	45
8.	'कांगड़ा घाटी में इन्द्रु नाग'	रतन लाल चौधरी, एम ए.	53
9.	संस्कृति का जनपद : बघाट	लेख राम चौहान हिमाचली	57
10.	हिमाचली में अ की ध्वनि और वर्तनी	श्याम लाल डोगरा	62
11.	नादौन नगरी की पृष्ठभूमि	डा० ब्रह्मदत्त शर्मा	75
12.	पहाड़ी शैली के रागमाला चित्र	इनाक्षी महाजन	82
	समीक्षा दृष्टि		
13.	क्रांतिकारी साहित्यकार : यशपाल	शशि कान्त जोशी	86
	संस्कृतानुभाग		
1.	सम्पादकीयम्		91
2.	अम्बिकाराधना	आचार्य हरिबल्लभ शर्मा	92
3.	भारतीय-संस्कृति	आचार्य रामानन्द शर्मा	93
4.	दुर्लभोऽभिलेख:	पृथुराम शास्त्री	101
5.	हिन्दू संस्कृति	आचार्य रामानन्द	104
6.	संस्कृती विद्या	आचार्य मदन मोहन शर्मा	109
7.	वेदानाम् पौरूषेयम्	बलिराम शर्मा आचार्य	112
8.	सूक्ति सुधा एवं प्रहेलिका	राका जोशी	114

हिन्दी अनुभाग

tharahkardu.in

सम्पादकीय

साहित्यिक पत्रिकाएं यदि पाठकों को नवीन सामग्री उपलब्ध करवाती रहे, तभी उनकी जीवन्तता आंकी जा सकती है। किसी भी पत्रिका के जीवन्त होने का अर्थ है, उसकी सार्थकता, मूल्यवत्ता, वे पत्रिकाएं जो किसी बाड़े में बन्ध कर स्वयं को किन्हीं तथाकथित श्रेष्ठताओं से जोड़ कर पाठकों को चमत्कृत करना चाहती हैं, साहित्य के क्षेत्र में अधिक देर नही टिक पातीं। कोई भी पत्रिका किसी वैचारिकता के ढांचे में ढल कर, फिर सर्वसाधारण की प्रतिनिधि होने का हक जताती है, तो यह एक आत्म प्रवंचन्त के और कुछ नहीं है। मेरा आशय किसी भी पत्रिका के स्वरूप को सर्वविध रूप से सम्पन्न बनाने से है।

पत्रिकाएं सब के लिए व सबकी होती हैं, अत: उनमें सबका योगदान अपेक्षित है। परिणाम स्वरूप सोमसी सबके लिए संवाद का खुला मंच है। अत: प्रदेश के सभी लेखको के सर्वविध, बहुनिध, बहुपक्षीय सामग्री की अपेक्षा करती है। इस पत्रिका की शुरू से लेकर आज तक यही नीति रही है,कि इस प्रदेश के प्रबुद्ध से प्रबुद्ध लेखक अपने उत्तमोत्तम लेख भेजें, ताकि यह पत्रिका अपने स्तरीयता के दावे को सिद्ध करती रहे।

इस अंक में भी, हमने परम्परा के अनुसार, रोचक, विविधता बनाए रखने का प्रयास किया है। वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, तथा कांगड़ा और उसके देवस्थान, जहां धर्म और देव भावना को पुष्ट करने वाले लेख हैं, वहां "नदौन नगरी की पृष्ठभूमि, तथा हिमाचली में 'अ' ध्वनि और वर्तनी, सांस्कृतिक समृद्धि तथा बोली अध्ययन के परिचायक लेख हैं।" पहाड़ी शैली के रागमाला चित्र, प्रदेश के नए आयाम को उद्घाटित करता है। इसी प्रकार अन्य लेख भी, अपने-अपने विषय और क्षेत्र के उपयोगी लेख हैं। आशा है कि, आप सब पाठकों, बुद्धिजीवियों को यह अंक भी पसन्द आएगा और आप हमें पहले की भांति ही अधिकाधिक सहयोग करने के संकल्प को दुहराएंगे।

—रमाकान्त जोशी

वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास

● प्रेम लाल गौतम आचार्य

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के स्रोत वेद माननीया महिमा से मंडित है। वेद निःसन्देह ज्ञान की अतीव पुण्या सलिकला मानसरोवर झील है, जहां से विभिन्न ज्ञान सरिताएं भवतापतापित लोगों की पिपासा व जिज्ञासा को प्रशान्त करती प्रवाहित होती हैं। तत्ववेता ऋषियों ने अपने प्रातिभ दिव्य चक्षुओं से वेदमन्त्रों का साक्षात्कार किया (ऋषयोमन्त्र द्रष्टारः)। वेद संहिताएं ब्राह्मण ग्रन्थ, आरन्यक ग्रन्थ, उपनिषद, वेदाङ्ग एवं सौत्र ग्रन्थों के बाद वेदोत्तरकालीन साहित्य में पुराण, रामायण, महाभारत तथा दर्शन ग्रन्थों आदि का स्थान हैं।

दर्शन ग्रन्थों को आस्तिक तथा नास्तिक रूप से दो भागों में विभाजित किया जाता है। 'नास्तिको वेद निन्दकः' अर्थात् वेदों की निंदा करने वाला नास्तिक कहा जाता है। इस विधा में चार्वाक, जैन (आर्हत) तथा बौद्धदर्शन आते हैं। आस्तिक दर्शन ईश्वर की सत्ता स्वीकार करते हैं। इनको मुख्यतः न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा तथा उत्तर मीमांसा (वेदान्त) शैव धर्म, वैष्णव धर्म आदि आस्तिक दर्शनों मे माना जाता है। इस लेख के द्वारा वैष्णव धर्म पर संक्षिप्त रूपेण विचार अभीष्ट है।

(क) वैष्णव धर्म का प्रारम्भक स्वरुप :- ऋग्वेद भारतवर्ष में सर्व प्राचीनतम ग्रन्थ स्वीकार किया जाता है। पाश्चात्य विद्वानों ने ऋग्वेद का काल अनुमानतः 1400 ई० पूर्व से लेकर 1000 ई० तक माना है। ऋग्वेद में विष्णु का अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद तथा परवर्ति ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि विष्णु ऋग्वेद काल में प्रमुख थे। ऋग्वेद में विष्णु के विग्रह तत्व की अनेक विशेषताएं उल्लिखित हुई, जिनमें उन्हें युवा, कुमार, तथा वृहत् आकार वाला माना गया हैं। 'वृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः' (ऋ.1-155-2) यह केवल लौकिक विग्रह का उदाहरण था। इसके अतिरिक्त उनके दिव्य विग्रह का भी उल्लेख मिलता है। अन्यत्र विष्णु को 'शिपिविष्ट' कहा गया है जिसका अर्थ है—अपनी किरणों से पृथ्वी को लपेटे हुए। बाद के साहित्य में उनके इस आकार को परिबृहत् रूप में चित्रित किया गया है। यथा—उद्यत्कोटि दिवा करामः यः सवितृमण्डलमध्यवर्तिनः' कहा गया है। वेदों में (ऋग्वेद में)

विष्णु के पद का उल्लेख हुआ है—'तद् विष्णोः परम् पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवि व चक्षुराततं'' इस मन्त्र में विष्णु के तीन पदों का उल्लेख है। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार ये तीन पद पृथ्वी, वायु तथा द्युलोक के द्योतक हैं। विष्णु सूक्त में 'यस्य त्री पूर्णा मधुना पदानि, अक्षीयमाणा स्वधयामदन्ति। य ऊ त्रिधातु पृथ्वीमुतद्यामे को दधार भुवनानि विश्वा।'

विष्णु का तीसरा पद कौन सा है, इस विषय में विद्वानो में मतभेद हैं। वैदिक ग्रन्थों में तीसरे पद को उत्तम कहा गया है। उसे मधु का उत्स कहा गया है। व्याख्याकारों के अनुसार तीन पद सूर्य पथ के बोधक हैं। और्णक्षभ के अनुसार ये तीनों पद सूर्य की गति या उसके दायरे को प्रकट करते हैं। सूर्य की तीव्र गति उदय, आरोहण, अस्त इन्हीं तीन गतियों के द्योतक यह तीन पद हैं। पाश्चात्य विद्वानों में होप् किन्स विष्णु के पद को मृतकों का स्थान बताते हैं। अन्य विद्वान् आकाश को विष्णु पद कहते हैं, क्योंकि वहां विष्णु है। अतः निष्कर्ष यह है कि विष्णु का सम्बन्ध आकाश से है। आकार चिन्तन कर उसे सूर्य के रूप में माना जा सकता है।

ऋग्वेद में उनके चरित्र की अनेक विशेषताओं का उद्घाटन किया गया है। वे उरू गाय तथा उरूक्रम—इन दोनों का अर्थ किरणों से युक्त होना तथा गतियुक्त हैं। विष्णु विष् गतौ से निष्पन्न होता है। ऋग्वेद में विष्णु के अन्य नाम गोप आदि भी मिलते हैं। बौद्धायन धर्मसूत्र में इनका अन्य नाम गोबिन्द भी मिलता है। ये दोनों नाम पूर्ववर्ति गोपवेषधारी कृष्ण के बोधक हो गये हैं। वैदिक साहित्य में विष्णु के सम्बन्ध में अनेक गाथाएं भी उपलब्ध हैं। वे रामायण तथा पुराणादि में पल्लवित हुई हैं। विष्णु के सम्बन्ध में कहा गया है कि विष्णु ने वामन का रूप धारण कर तीनों लोको पर विजय प्राप्त की थी। यथा—

'प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषुविक्रमणेषु अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥

इस प्रकार की गाथा वेदोत्तरकालीन साहित्य में वामनावतार का पथ तैयार करती हैं। ऋग्वेद में वराह का भी उल्लेख मिलता है तथा वह शतपथ ब्राह्मण में सृष्टि रचना सम्बन्धी रूप में आता है। कहा गया है कि उसने पृथिवी को जल से बाहर निकाला। यही रूप रामायण और पुराणों में विष्णु के एक अवतार वराह के रूप में विख्यात हो गया। यही वराह पृथ्वी को उठाने, विष्णु के मत्स्य तथा कूर्मावतारों के उल्लेख में ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। अवतार सम्बन्धी धारणा का मूल वैदिक साहित्य है तथा यह धारणा बाद में पल्लवित हुई।

वैदिक साहित्य में विश्वात्मवाद तथा एकात्मवाद ये दो सिद्धान्त मिलते हैं। पहले के अनुसार जगत में ईश्वर की व्यापकता, और दूसरे के अनुसार देवताओं का एकीकरण सिद्ध किया जाता है। सूर्य, अग्नि, वरूण आदि अनेक देव एक देवता के रूप हैं। इन दोनों विचार धाराओं से अवतारवाद का सिद्धान्त जन्म लेता है।

(ख) **भक्तिः**- कुछ विद्वानों का विचार है कि भक्ति का सिद्धान्त आर्येत्तर धर्मों की देन है, परन्तु डाक्टर भण्डारकर का विचार है कि उपनिषदों की उपासना में भक्ति का मूल ढूंढा जा सकता है। कुछ विद्वानों ने अष्टाध्यायी के (4-3-98 के अनुसार भक्ति का तत्व ढूंढा है। वहां पूजार्ह पद का प्रयोग है, जोकि पूजा के योग्य देव में अलग प्रत्यय का विधान करता है। अष्टाध्यायी से पूर्व श्वेताश्व उपनिषद् में पराभक्ति की चर्चा आई है। भक्ति सूत्रों में भी कहा गया है—'सा परानुरक्तिरीश्वेर' परमेश्वर में वह परम अनुराग कहलाता है। भारतीय विचारकों का कथन है कि भक्ति मार्ग विशुद्ध रूप से भारत की देन है। बौद्ध ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि वासुदेव पूजनीय है। पाणिनि भी वासुदेव को दिव्य पुरुष के रूप में देखते हैं, क्षत्रिय के रूप में नहीं। ईसा पूर्व तीसरी-चौथी शताब्दियों में ऐसा धर्म था, जिसके केन्द्र 3 वासुदेव थे तथा अनुयायी भागवत थे।

वासुदेव भगवत् सम्बन्ध पुराने मन्त्रों में भी मिलता है -'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" भागवत् तथा वासुदेव एक कहे गए है। बाद के साहित्य में वासुदेव का तादात्म्य विष्णु से कर दिया गया है तथा श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है -'आदित्यानामहं विष्णुः।' इस प्रकार वासुदेव भगवान विष्णु एक ही देवता के तीन रूप हो सकते हैं।

(ग) **नारायण और विष्णु** :- नारायण शब्द नाडायन शब्द जैसा है। नाडायन का अर्थ हैं — नडों का समूह। यहां फक प्रत्यय हुआ हैं। इसी आधार पर नारायण का अर्थ नरों का समूह या उनका आश्रय है। नारायणीय में हरि अर्जुन से कहते हैं कि 'नराणाम् यनम्' के रूप में प्रसिद्ध हूँ। नृ या नर शब्द का प्रयोग विशेषतः वेदों में वीर पुरुषों के अर्थ में या देवों के लिए भी होता है, अतएव नारायण शब्द की व्याख्या देवों के आश्रय के रूप में या वीर पुरुषों के आश्रय के रूप में की जा सकती है। एक परम्परा के अनुसार नारायण का सम्बन्ध जल से माना जाता है। मनुस्मृति (१-१०) के अनुसार जल को 'नारा;' कहा जाता है। "आपो नारा: इति प्रोक्ता: आपो वैनर सूनव:"। मनुस्मृति के अनुसार जल ब्रह्मा का आद्य आश्रय था। नारायणीय के अनुसार हरि का आश्रय था। अत: ब्रह्मा तथा हरि नारायण कहलाए। एक परम्परा यह है कि विष्णु या नारायण की नाभि से ब्रह्मा देव उत्पन्न हुए। वायु पुराण के अनुसार नारायण को अव्यक्त से पूर्ववर्ति माना है। शतपथ ब्राह्मण में एक दिव्य पुरुष का उल्लेख मिलता है जिसमें प्रजापति को बलि प्रदान की थी। उसी में उसे पंचरात्र सत्र का प्रणेता कहा गया है। बौद्धायन धर्म सूत्र से ज्ञात होता है कि नारायण तथा विष्णु दोनों एक ही हैं। इसी बात का समर्थन तैत्तिरीय अरण्यक (१०/१) से होता है। यथा —'नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्'। इस सन्दर्भ से स्पष्ट है कि नारायण, वासुदेव तथा विष्णु ये तीनों एक ही देव हैं। महाभारत के कुछ पद भी इस बात का समर्थन करते हैं। महाभारत के अनुसार नारायण प्राचीन ऋषि थे। वे धर्म के पुत्र थे। उनका साथ नर से था। वे पृथ्वी लोक से ब्रह्म लोक गए वहां उन्होंनें राक्षसों को नष्ट किया तथा असुर

संघर्ष में नर नारायण के द्वारा इन्द्र की सहायता की गई। कुछ विद्वानों ने इस कथन की अन्य ढंग से व्याख्या की है। उनके अनुसार नर का अर्थ अर्जुन है तथा नारायण का अर्थ कृष्ण है।

कथासरित् सागर में नारायण का लोकश्वेत द्वीप माना जाता है। अन्यत्र यह भी कहा गया है कि यह क्षीर सागर के समीप था। श्वेत द्वीप के निवासी नारायण की पूजा करते थे। कुछ विद्वानों का विचार है कि कभी कुछ भारतीय वैष्णव उधर गए थे और ईसा को नारायण का अवतार बनाना चाहते थे। दूसरे विद्वान् इसे केवल काल्पनिक कथा कहते हैं। राय चौधरी के अनुसार ऋग्वेद का विष्णु और श्वेत द्वीप का नारायण दोनों समान हैं, क्योंकि दोनों का सम्बन्ध सूर्य से है। डाक्टर भण्डारकर के अनुसार नारायण का चरित्र सर्गात्म है। यह ऐतिहासिक तथा पौराणिक नहीं। वे नारायण का अर्थ 'नर का अयन' अर्थात् मानवों के लिए प्राप्तव्य धाम के रूप में लेते हैं। संक्षेप में कहा जाता है कि नारायण का सम्बन्ध विष्णु के साथ जोड़ने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि नारायण और विष्णु दोनों एक ही प्रकार की चारित्रिक विशेषताओं से युक्त देव है।

(घ) **विष्णु से वासुदेव का तादात्म्य**:—वैदिक देवता विष्णु ब्राह्मणकाल में महत्वपूर्ण स्थान को प्राप्त हो गये थे और पुराणकाल में वे परमेश्वर बन गये थे। उनका महत्व परम पद के कारण था। विष्णु की श्रेष्ठता के बीज हमें ऐतरेय ब्राह्मण (१/१) तथा शतपथ ब्राह्मण में मिल जाते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में अग्नि को छोटा देव और विष्णु को सर्वोच्च देव माना गया है। शतपथ ब्राह्मण में एक कथा आती है जिसमें बताया गया है कि देवों के द्वारा तेज, ऐश्वर्य तथा अन्न प्राप्ति के लिए यज्ञ किया गया। सभी देवताओं ने यज्ञ का सार जानना चाहा। विष्णु को छोड़ कर कोई भी इस कार्य में सफल नहीं हुआ। विष्णु ने यज्ञ का अर्थ पाया और वह सर्वोच्च देव बन गया। मैत्र्युपनिषद् में अन्न को विष्णु का स्वरूप माना गया है। उत्तर वैदिक कालीन साहित्य का विष्णु अब धीरे-धीरे गृह देवता बनने लगा। कठोपनिषद् में भी जीवात्मा के उत्कर्ष की तुलना विष्णु से की गई है। कतिपय मन्त्रों से, जिन्हें सप्तपदी के अवसर पर पढ़ा जाता है, विदित होता है कि विष्णु तुम्हारे साथ हो। इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट है कि विष्णु की प्रतिष्ठा गृह-गृह में होने लगी थी। विष्णु तथा वासुदेव कृष्ण का एकत्व बाद के साहित्य में मिलता है। भगवद्गीता और अनुगीता से स्पष्ट है कि विष्णु तथा वासुदेव, कृष्ण एक देव थे। महाभारत के शान्तिपर्व अध्याय 43 में कृष्ण को विष्णु माना गया है। महाभारत में ऐसे भी स्थल मिलते हैं, जहां वासुदेव (कृष्ण) के देवत्व को स्वीकार नहीं किया गया है। मूर ने O.S.T. पृष्ठ 205 पर ऐसे अनेक उदाहरण दिये हैं, जिनसे यह स्पष्ट है कि महाभारत के समय कृष्ण के देवत्व को नहीं माना जाता था। धीरे-धीरे धार्मिक चिन्तन की तीन धाराएं इकट्ठी हुई। इन तीन धाराओं से वैष्णव मत का निर्माण हुआ। ये थीं वैदिक विष्णु, विराट नारायण तथा ऐतिहासिक वासुदेव।

(ङ) **विष्णु और कृष्ण**:— महाभारत और पुराणों में वासुदेव को वासुदेव का पुत्र कहा गया है। वहां वासुदेव की कुछ दार्शनिक व्याख्याएं की गई हैं। भण्डारकर का विचार है कि

"अष्टाध्यायी" और "घटक जातक" की टीकाएं यह संकेत देती हैं कि वसु या कृष्ण संज्ञाएं हैं। व्यक्ति का और इनका सम्बन्ध कार्ष्णायन गोत्र से है। घटक जातक टीकाकार के अनुसार कृष्ण गोत्र का भी नाम हो सकता है। बाद के साहित्य में उल्लेख मिलता है कि कृष्ण को कृष्ण इसलिए कहा जाने लगा कि वे काले थे। कृष्ण का प्राचीनतम उल्लेख छान्दोग्योपनिषद में मिलता है। वहां कृष्ण को देव पुत्र और घोर अङ्गिरस के शिष्य के रूप में चित्रित किया गया है। उसी ग्रन्थ से यह भी विदित होता है कि कृष्ण अशुमती नदी के किनारे रहते थे, यह नदी यमुना हो सकती है। महाभाष्य में भी वासुदेव कृष्ण का उल्लेख है। पतञ्जलि कंस वध का उल्लेख करते हुए कृष्ण का वर्णन उद्धृत पद्य द्वारा करते हैं -

"जघान कंसं किलवासुदेव: असाधुर्मातुले कृष्ण: ।"

चतुर्थशती पूर्व कृष्ण तथा उनकी नगरी का उल्लेख करते हैं। ऐतिहासिक तत्वों के आधार पर अंगिरस परिवार का सम्बन्ध भोजों के साथ या भोज यादवों जैसे थे। अंगिरस सूर्य पूजक थे। भागवत धर्म में भी नारायण या सूर्य की पूजा को महत्व दिया गया है। गीता के चौथे अध्याय के प्रथम श्लोक में बताया गया है—

"इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥

भागवत् धर्म सूर्य को उपदिष्ट था। सूर्य ने मनु को मनु ने इक्ष्वाकु को उपदेश किया था। परवर्ति काल में कृष्ण के साथ गोपचरित भी जोड़ागया और हरिवंश, वायु पुराण और भागवत् पुराण में बाल लीलाएं भी चित्रित की जाने लगीं। होपकिन्स का विचार है कि पौराणिक काल में कृष्ण का महत्व और अधिक बढ़ने लगा था। कृष्ण के इन रूपों की तुलना वैदिक आख्यानों से की जा सकती है। बौधायन धर्म सूत्र में गोबिन्द् दामोदर का उल्लेख है। मथुरा के यादव सारवत्त वृष्णि गोपालक थे। बारथ और होपकिन्स का विचार है कि कृष्ण मानव नहीं थे, वे प्रसिद्ध देव थे, जिनका विष्णु के साथ तादात्म्य होने पर वैष्णव धर्म का उदय हुआ। कुछ विद्वानों का विचार है कि कृष्ण पाण्डवों के पारिवारिक देव थे। कृष्ण का सूर्य के साथ कुछ विद्वानों ने सम्बन्ध स्थापित किया है, परन्तु कीथ ने इसका खण्डन किया है। भण्डारकर का विचार है कि जो व्यक्ति कृष्ण को मानव मानते हैं, यह उचित नहीं है। वे वास्तविक देव थे, काल्पनिक नहीं। कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया था। दास गुप्त के अनुसार गीता भागवत् सम्प्रदाय का अंश है तथा इसकी रचना महाभारत से पूर्व हुई है। राधाकृष्णन् गीता को महाभारत का अंग मानते हैं। उनका कथन है कि गीता विरोधात्मक तथ्यों का समन्वय कर उन्हें समष्टि के रूप में चित्रित करती है। गीता में ज्ञान और योग का उपदेश दिया गया है। उसमें भक्ति मार्ग सबके लिए समान रूप से है। प्रेम तथा

आत्मसमर्पण "स च मे भक्तः स च मे प्रियः"। हरियमा का विचार है कि गीता कर्मों के त्याग के बदले कर्म में त्याग का उपदेश देती है। राधाकृष्णन् भी कर्मयोग को गीता का मौखिक उपदेश मानते हैं। चतुर्व्यूह सिद्धान्त पांचरात्र का सिद्धान्त है। बाद में वही वैष्णव दर्शन के द्वारा स्वीकार कर लिया गया। भागवत् के अनुसार पांचरात्र संहिताओं में कहा गया है। अभिगमन (मन्दिर जाना) उपादान पूजा सामग्री साथ ले जाना। इज्या (पूजा) स्वाध्याय (सम्प्रदाय के अनुसार पूजा) हरिभजन, स्मरण, कीर्तन, प्रणमन, चरण सेवन, पूजन और आत्म निर्देशन।

(च) विष्णु या नारायण के अवतार:—नारायणीय में विष्णु के छः अवतार बताए गये हैं—बराह, नृसिंह, बामन, भृगुवंशीयराम, दाशरथी राम, बासुदेव कृष्ण। उसी ग्रन्थ के दूसरे प्रकारण में अवतारों की संख्या दस हो गई है, जिनमें हंस, कूर्म, मत्स्य, कल्कि सम्मिलित हैं। हरिवंश में भी छः प्रकार दिये गये हैं, जो कि पूर्ववत हैं। वायु पुराण में विष्णु के अवतारों का दो स्थलों पर उल्लेख मिलता है। पहले स्थल में 97-72 बारह अवतार हैं, जिनमें कुछ अवतार शिव तथा इन्द्र के हैं। दूसरे स्थल में 10 अवतार हैं। भागवत् में 22 अवतार, जिनमें प्रथम स्कन्द तृतीय अध्याय में 2 /2 स्क०/7 अ० 16 अवतारों का उल्लेख है।

(छ) रामोपासना:—राम विष्णु के अवतार थे ऐसा संकेत बाल्मीकि रामायण में है। परन्तु यह संकेत स्थल अप्रमाणित तथा प्रक्षिप्त है। नारायणीय में ऐसा उल्लेख है, परन्तु उसे भी प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। कालिदास के रघुवंश 10वें सर्ग में रामजन्म की कथा से पूर्व विष्णु या नारायण की स्तुति की गई है। तब वे रावण के विनाश हेतु दशरथ के पुत्र रूप में जन्म लेने का वचन देते हैं। वायु पुराण में भी ऐसा उल्लेख है। यद्यपि पतञ्जलि महाभाष्य में रामावतार का उल्लेख नहीं मिलता, उस समय के शिलालेख भी नहीं मिलते, जो अवतार की पुष्टि कर सकें। अमरकोष के देवकाण्ड में राम का स्थान नहीं है। यद्यपि उन्हें अवतार माना जाने लगा था, परन्तु उनका स्वतन्त्र धार्मिक मत नहीं था। बाल्मीकि ने रामायण में राम की अलौकिकता वर्णित की है। भवभूति ने उत्कर्ष की ओर बढ़ाया है। ऐसा लगता है कि भवभूति के बाद राम को स्वतन्त्र रूप से पूजा जाने लगा। रामोपसना कब आरम्भ हुई ऐसा, कहना कठिन है फिर भी मध्व 1264 ई० में बद्रिकाश्रम से राम की प्रतिमा लाए थे और इन्होंने नरहरि तीर्थ को सीता की प्रतिमा लाने के लिए जगन्नाथपुरी भेजा था, अतः एव रामो पासना 12वीं शताब्दी के लगभग अस्तित्व में आ गई होगी। तात्कालिक कई ग्रन्थों में राम की पूजा विधि वर्णित है। हेमाद्रि 13वीं ने व्रतखण्ड में चैत्र शुक्ल नवमी के दिन राम जन्म मानने का उल्लेख किया है। वृद्ध हारीत ने भी अपने स्मृति ग्रन्थ में पूजा विधि का उल्लेख किया है। दोनों लेखकों ने विष्णु के चौबीस रूपों का वर्ण किया है। एकनाथ द्वारा राम के देवता का वर्णन करने के बाद यह सम्प्रदाय बन गया।

(ज) दक्षिण में वासुदेवोपासना :- ईसा से १०० वर्ष पूर्व महाराष्ट्र में वासुदेव की पूजा होने लगी थी। वहां से यह पूजा पद्धति दक्षिण में तथा तमिल प्रदेश में फैली। भागवत ११-५-३८ में

भविष्यवाणी की शैली में कहा गया है कि कलियुग में नारायण में भक्ति रखने वाले इधर-उधर प्राप्त होंगे। द्रविड़ प्रदेश, जहां ताम्रवर्णी कावेरी आदि नदियां बहती है, वहां अधिकांश नारायण भक्त होंगे। भागवत् पुराण संकलन समय पर तामिल प्रदेश में वासुदेव भक्तों की प्रसिद्धि हो गई थी। यह पुराण १३वीं सदी में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। आनन्द तीर्थ ने (११९८-१२७८) इसकी व्याख्या के लिए ग्रन्थ लिखा था। दक्षिण में आलवार भक्त ४वीं तथा ५वी शती में हुए। उन्होंने तमिल में प्रबन्धों की रचना की थी। उनके प्रबन्ध परम पवित्र वैष्णव वेद माने जाते है। स्मरण रहे, वैष्णव सम्प्रदाय के समस्त आचार्य दक्षिण के ही हुए हैं।

क) वैष्णव धर्म के प्रसिद्ध आचार्य व समर्थक :, वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों की एक लम्बी परम्परा रही है। तथापि प्रसिद्ध आचार्यों के नाम उल्लेखनीय है। यथा: पाराशर्य, शाण्डिल्य, गर्ग, नारद कुमार, शुक्र, विष्णु, कौण्डिल्य, शेष, उद्धव, अरुणि, बलि, हनुमान, विभीषण कश्यप, बादरायण, रामानुज, मध्व, आनन्दतीर्थ, निम्बर्कि, वल्लभ रामा नन्द, कबीर, अन्यरामानन्दी, तुलसी दास, चैतन्य, नामदेव और तुकाराम। इसके अतिरिक्त अनेकों शिष्य, प्रशिष्य इस सम्प्रदाय में हुए हैं। पंचरात्र, भागवत तथा त्रिदण्डी वैष्णव सम्प्रदाय माने गये हैं। वैष्णव सम्प्रदाय प्राचीन काल से चार प्रधान विभागों में विभाजित हैं।

(ख) **चार प्रधान सम्प्रदाय :-**

प्रथम:- श्री वैष्णव सम्प्रदाय (श्री सम्प्रदाय) 10-11 वीं सदी,
द्वितीय:- सनक सम्प्रदाय (हंस सम्प्रदाय) 12 वीं सदी,
तृतीय:- ब्रह्म सम्प्रदाय (13वीं सदी)
चतुर्थ:- रूद्र सम्प्रदाय (15वीं सदी)

1—**श्री वैष्णव सम्प्रदाय :-** नारायण से लेकर गुरु परम्परा का क्रम प्रत्येक सम्प्रदाय में मिलता है। भक्ति से युक्त अपने पद्यों व गायनों द्वारा आनन्द विभोर बनाने वाले वैष्णव सन्त का नाम आलवार है। श्री सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य रामानुज को माना जाता है। इनका दार्शनिक मत विशिष्टाऽद्वैत के नाम से विख्यात है। इनके अनुसार चेतन जीव और जड़ जगत दोनों ब्रह्म से ही उत्पन्न होते हैं। ब्रह्म दोनों का निमित और उपादान दोनों ही कारण है। दोनों का अस्तित्व ब्रह्म के बिना नहीं है, अत: एकमात्र अद्वैत तत्व ब्रह्म को कहा जा सकता है, परन्तु जीव और जड़ जगत ब्रह्म से उत्पन्न होने पर भी असत नहीं है। जीव और जड़ जगत ईश्वर के शरीर तुल्य हैं, जैसे जीवात्मा का स्थूल शरीर असत्य नहीं, तदवत् वे भी असत्य नहीं और जीव तथा जड़ जगत ब्रह्म से पैदा होने पर भी ब्रह्म से भिन्न हैं। जैसे शरीर आत्मा नहीं हो सकती उसी प्रकार वे ब्रह्म नहीं हो सकते। अत: ब्रह्म (ईश्वर) का अद्वैत रूप जीव और जड़ जगत के द्वैत रूप से विशिष्ट है। इस तरह इस दार्शनिक मत को विशिष्टाद्वैत कहते हैं। अद्वैत व द्वैत तत्व

दोनों का विशिष्टा द्वैत ने समन्वय कर दिया है। श्री भाष्य, वेदान्त सार, वेदार्थ संग्रह और वेदान्त दीप रामानुज के प्रसिद्ध मुख्य ग्रन्थ हैं।

2—**सनक सम्प्रदाय** (हंस सम्प्रदाय) :- द्वितीय आचार्य निम्बार्क का दार्शनिक मत द्वैताद्वैत या भेदाऽभेद नाम से प्रसिद्ध है। इनके मत में चित् (जीव) अचित् (जड़ जगत) तथा ईश्वर तीन तत्व हैं। ये क्रमश; भोक्ता, भोग्य और नियन्ता है। जिस प्रकार सूर्य प्रकाश व प्रकाशवान है उसी तरह जीव ज्ञानस्वरूप (ज्ञान) व ज्ञानवाला भी है, क्योंकि उपनिषदों में जीव को 'प्रज्ञान धन' कहा है। निम्बार्क के मत में चेतन, जड़ व ईश्वर में न तो सर्वथा तादात्म्य या अभेद सम्बन्ध है और न ही सर्वथा भेद का ही सम्बन्ध है। इनके मत में यदि अभेद मानें तो तीनों के स्वभाव या गुणों का अन्तर कैसे होगा और यदि भेद मानें तो उसे अनन्त और सर्वव्यापक कैसे कह सकते हैं। उस स्थिति में तो वह ससीम हो जाएगा। भेद से इनका तात्पर्य है कि जीव व जड़ की पृथक सत्ता तो है परन्तु है ईश्वर के अधीन। (परतन्त्र सत्ताभव)। अभेद से अभिप्राय ईश्वर से भिन्न स्वतन्त्र सत्ता नहीं हैं (स्वतन्त्र सत्ताऽभाव)। अतः द्वैत, अद्वैत (भेद-अभेद) इन्हें दोनों अभीष्ट हैं। रामानुज और इनके मत में विशेष अन्तर नहीं है। इन्होंने 'वेदान्तपारिजातसौरभ' नामक टीका बादरायण के ब्रह्म सूत्रों पर लिखी है।

3. **ब्रह्म सम्प्रदाय** : आचार्य माधव ब्रह्म सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। इनका दार्शनिक मत द्वैतवाद है। इतर वैष्णव सम्प्रदायों में कोई भी अद्वैत तत्व को नहीं मानते, परन्तु वे किसी न किसी प्रकार से द्वैत से अद्वैत की सङ्गति करते हैं। माधव सम्प्रदाय अद्वैत का खण्डन कर द्वैत वादी है। इसके अनुसार ब्रह्म, जीव और जड़ तीनों नित्य स्वतन्त्र पदार्थ हैं। जीव और जड़ को ब्रह्म से उत्पन्न न मान कर स्वतन्त्र पदार्थ स्वीकार करते हैं। इनको अद्वैतवाद का विरोधी मान कर त्रैतादी का संस्थापक कहना चाहिए क्योंकि इन्होंने तीनों पदार्थों की स्वतन्त्र सत्ता मानी है। माधव ने ब्रह्म सूत्र (वेदान्त) उपनिषदों व गीता पर भाष्य किए हैं। शङ्कराचार्य ने जहां अद्वैतवाद की स्थापना की है, वहां इन्होंने द्वैतपरक अर्थ करके खण्डन किया है।

(4) **रुद्र सम्प्रदाय**;- इस सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य व संस्थापक विष्णु स्वामी माने जाते है बाद में बल्लभाचार्य ने विशेष प्रचार किया, इसलिए इस सम्प्रदाय को विष्णु स्वामी-सम्प्रदाय या बल्लभ सम्प्रदाय के नाम से भी पुकारा जाता है। इस सम्प्रदाय का दार्शनिक मत शुद्धा द्वैत के नाम से प्रसिद्ध है। बल्लभाचार्य के मतानुसार जीव, जड़ और ब्रह्म इन तीनों में से पूर्व दोनों जीव जड़ ब्रह्म से भिन्न नहीं, प्रत्युत दोनों ब्रह्म रूप ही हैं। ब्रह्म के साथ जीव और जड़ की एक स्वरूपता है। यही शुद्ध एकता शुद्धाद्वैत है। बल्लभ शङ्कर के अद्वैतवाद के अनुसार जीव और जड़ जगत माया की उपाधि से प्रकट न मानकर जीव तथा जड़ जगत दोनों को स्वतः ब्रह्मस्वरूप मानते हैं। इनके अनुसार माया का कोई अस्तित्व नहीं है। माया प्रपंच को न मान कर अपने मत का नाम शुद्धाद्वैत रखा है। इसी शुद्धाद्वैत के अनुसार ब्रह्म सूत्रों पर भाष्य व स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे हैं।

गौण व मुख्य भेद से' शक्ति संगमतंत्र के अनुसार वैष्णव सम्प्रदायों की संख्या दस कही है— वैखानस श्री राधाबल्लभी, गोकुलेश, वृन्दावनी, रामानंदी हरिव्यासी, निम्बार्क, भागवत, पांचरात्र तथा वीरवैष्णव।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक सम्प्रदाय की पृथक-पृथक मीमांसा, ज्ञानमीमांसा व आचारमीमांसा आगम ग्रन्थों या दार्शनिक ग्रन्थों में विस्तृत वर्णित है। विस्तार भय से अधिक उल्लेख करना अनावश्यक या कठिन है। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि अन्य दर्शनों में ज्ञान की प्रधानता है। और वैष्णव धर्म में भक्ति की प्रधानता है। नारद ने अपने भक्ति सूत्र में कहा है—

"सा तु कर्म ज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा"

अर्थात वह (भक्ति) कर्म ज्ञान और योग से भी बढ़ कर है।

संस्कृत महाविद्यालय
नाहन

कांगड़ा और उसके देवस्थान

● पृथुराम शास्त्री

भारत के सांस्कृतिक जीवन में यात्रा का महत्वपूर्ण स्थान है। यात्रा द्वारा धार्मिक इतिहास का ज्ञान, गम्य स्थानों का भौगोलिक परिचय. उनके प्रति अनुराग तथा उससे राष्ट्रव्यापिनी भावात्मक एकता पुष्ट होती है। यात्री प्रकृति के दिव्य एवं विराट् स्वरूप के दर्शन कर अपनी तुच्छता को अनुभव करता है, उसका अहंभाव मिट जाता है और वह प्रकृति के विराट् स्वरूप में उस परम सत्ता को अनुभव कर उसी में घुल-मिल जाना चाहता है।

आज के युग में यात्रा के स्थान पर पर्यटन पनपता जा रहा है। यात्रा और पर्यटन, इन दोनों का बाह्य स्वरूप समान होने पर भी आन्तरिक दृष्टि से इनमें पर्याप्त अन्तर है। जहां पर्यटन का उद्देश्य दैनिक कृत्य में अतिव्यस्त अत: एव थके मान्दे पर्यटक को अल्पकालिक थिथलासा मनोविनोद देना है वहां यात्री द्वारा यात्री के मन के मल का अपहरण होता है और वह सुसंस्कृत हो कर अध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होता है।

यात्रा और जालन्धरपीठ : हिमाचल प्रदेश में कांगड़ा जनपद को जालन्धरपीठ की संज्ञा मिली है। पौराणिक कथाओं एवं लोक साहित्य में इस पीठ के देव स्थानों का भव्य वर्णन है। ये देव स्थान शैव, शाक्त तथा अन्यान्य धार्मिक सम्प्रदायों के साथ सम्बद्ध हैं। तांत्रिक दृष्टि से समूचे पीठ में श्रीयंत्र की परिकल्पना की गई है। जैसे श्रीयंत्र में चार कोण होते हैं वैसे उस पीठ में भी कालेश्वर कुरुवीरेश्वर (कतनौर), नन्दिकेश्वर और कुंजेश्वर नामक चार देवों को इस क्षेत्र का द्वारपाल माना जाता है। ये द्वारात्मक देव स्थान इस पीठ की दक्षिण से पूर्वान्त, चारों दिशाओं में स्थित है। श्रीयंत्र में जो स्थान बिन्दु-बिसर्ग को प्राप्त है, यंत्रभूत इस पीठ में उसी स्थान पर भगवती वज्रेश्वरी (कांगड़ा) का भवन स्थित है। सद्य प्रकाशित जालन्धर पीठ दीपिका के अनुसार यौगिक सन्दर्भ में कुण्डलिनी (जलेबी) रूप यात्रा मार्ग द्वारा उस पीठ की यात्रा करने का विधान है। इससे मूलाधार चक्र में सुप्तप्राय भगवती कुण्डलिनी (चैतन्य शक्ति) जागृत हो कर सुषुम्ना मार्ग द्वारा अन्यन्य अवरोधक चक्रों का भेद न कर अपने चरम लक्ष्य सहस्रार पद्म तक पहुंचने के लिए गतिशील होती है तथा उससे होता है यात्री का आध्यात्मिक विकास।

नामकरण : इसी भूमि पर लड़े गये देवासुर संग्राम की निम्न घटना के आधार पर इस क्षेत्र का नाम कांगड़ा पड़ा है। देवासुर-संग्राम में असुर राज जालन्धर का जो अंग कट जाता था वह तत्काल पुन: धड़ से जुड़ जाता था और संग्राम समाप्त होने में नहीं आता था। अन्ततः देव समूह ने युद्ध स्थल में एक गढ़ा खोदा और युद्ध के समय जैसे ही असुर का सिर कटा वैसे ही उसे तत्काल धड़ के साथ जुड़ने से पूर्व ही गढ़े में डाल कर दबा दिया। जिस स्थान पर असुर का सिर गाड़ा (दबाया) गया उस स्थान विशेष का नाम कांगड़ा पड़ा। इसी नाते वह स्थान जिस क्षेत्र में था उसका नाम भी यही पड़ गया। संस्कृत भाषा में (कं) शिर को कहा जाता है और गाड़ने को गड़ित। उस प्रकार कं + गडित = कंगड = कांगड़ा शब्द का विकास हुआ है। उक्त संग्राम में जहां असुर का धड़ गिरा था उस क्षेत्र को जालन्धर पीठ कहा गया है। तंत्र शास्त्रों में उसका विशेष महत्व वर्णित है।

प्रमुख देव स्थान : कालेश्वर, ज्वालामुखी, चामुण्डा, त्रिलोक नाथ, वैद्य नाथ आदि अनेक देव स्थान तीर्थ इस क्षेत्र में विद्यमान है। आस्थाशील यात्री सदा इन की यात्रा करते रहते हैं। नवरात्रों में तो विदेशों के यात्री भी देव दर्शन को आते हैं। परीक्षा में पास होने पर तो छात्रों का यहां तांता ही लग जाता है। विवाहादि मांगलिक कार्यों के अनन्तर देव दर्शन की तो परम्परा ही पड़ गई है। देव दर्शन के लिए जा रहे गाते, बजाते तथा नाचते हुए यात्री समूह देखते ही बनते हैं।

कांगड़ा नगर के आस पास अनेक देव स्थान और पवित्र तीर्थ हैं। इन्हीं में से एक है 'संगम तीर्थ और दूसरा है पुराण प्रसिद्ध भगवती "वज्रेश्वरी" का मुख्य भवन।

दक्षयज्ञ में दक्षपुत्री सती ने जब अपने पति शिवजी का अपमान होते देखा तो वह योगाग्नि से भस्म हो गई और उसके तैजस्य तत्व से भगवती बज्रेश्वरी का प्रादुर्भाव हुआ। वज्रेश्वरी ने शिवविहीन यज्ञ के आयोजकों को यथोचित दण्ड दिया उधर शिवजी सत्ती की दग्ध देह को कंधे पर उठा उन्मत से घूमने लगे। शिवजी का मोहभंग करने के लिए भगवान विष्णु सुदर्शन चक्र से सती के अंगों को काटने लगे। अंग एक एक करके गिरने लगे। कागड़ा में सती का स्तन गिरा। यहां स्तनाकार शक्तिति ग्रह की पूजा की जाती है।

प्रकाशनार्थ प्रतीक्ष्यमान रचना जालन्धर क्षेत्र महात्म्य में उक्त दोनों देव स्थानों से जुड़ा कथानक निम्न प्रकार से है। महाभारत की उक्त कथानक की पुष्टि करता है।

एक समय की बात है कि इस भूतल पर नृपश्रेष्ठ राजा मरुत राज्य किया करता था। एक बार उसने अपने मन में यज्ञ करने की ठानी और देवगुरु बृहस्पति की शरण में जाकर कहा 'हे गुरो' मैं यज्ञ करना चाहता हूं। इसके लिए आपको बुलाने आया हूं। आप मेरे यज्ञ करवाने की कृपा कीजिए।

बृहस्पति ने राजा मरुत्त की प्रार्थना देव राज इन्द्र को जा सुनाई। ईर्ष्यालु इन्द्र ने उपेक्षामात्र से स्वयं भी यज्ञ करने की ढ़ीली सी इच्छा प्रकट कर दी। इन्द्र के यज्ञ को परमसमृद्धिशाली समझ कर भी बृहस्पति ने राजा मरुत्त के अनुरोध को ठुकरा दिया। न्याय की दुहाई देकर राजा पुनः विनयपूर्वक बोला 'हे भगवन। आपको आमंत्रित करने के लिए प्रथमः मैं आपकी सेवा में पहुंचा दूं, इन्द्र नहीं, अतः आप को प्राथमिकता की दृष्टि से पहले मेरा ही यज्ञ करवाना चाहिए। लोभ से सद्विचार दब जाते हैं। लोभी गुरु फिर भी न माने।

निराश राजा मरुत्त मुंह लटकाए लौट रहे थे कि रास्ते में महामुनि नारद जी मिल गये और उदासी का कारण पूछने पर राजा ने सारी घटना कह सुनाई। तसल्ली देते हुए नारद ने कहा 'हे राजन' मन छोटा मत करो। मैं तुम्हें उपाय बताता हूं। वह देखो, अशोक वृक्ष के नीचे सम्वर्त मुनि खड़े हैं, मूर्ख लोग तो इन्हें पागल ही समझते हैं, पर तुम इन्हें ऐरा गैरा मत समझो ये बृहस्पति के छोटे भाई हैं और पहुँचे हुए तपस्वी हैं। इनके पैरों में पड़कर कहना कि मैं आपकी ही शरण में आया हूँ, क्योंकि आप से बढ़कर अन्य कोई भी परोपकारी नहीं है।

राजा मरुत्त ने वैसे ही किया। यज्ञ के लिए अनुरोध सुनकर सम्वर्त ने कहा—'हे राजन, मैं तुम से वैसा यज्ञ करवाऊंगा जैसा आज तक किसी ने नहीं किया है। तेरे यज्ञ के ठाठ देखकर लोभी बृहस्पति के मुंह में पानी भर आएगा और वह देवराज के पास जाकर तेरे यज्ञ में स्वयं आने के लिए गिड़गिड़ाएगा। ईर्ष्यालु इन्द्र भी तुम्हारे पास दूत भेज कर बृहस्पति को ही बुलाने के लिए तुम्हें विवश करेगा। यदि तुमने उसके कुचक्र में पड़कर उसे बुलाया तो याद रखना, मैं तुम्हें नष्ट कर दूंगा।

राजा मरुत्त द्वारा उक्त शर्त मान लिए जाने पर वे दोनों जालन्धर पीठ के पापापहारी संगम तीर्थ पर आए। स्नान के पश्चात सम्वर्त मुनि ने राजा को महालक्ष्मी मंत्र की दीक्षा दी। दीक्षित राजा भी नित्य प्रति संगम में स्नान कर पुनः भगवती वज्रेश्वरी के मन्दिर में जाकर महालक्ष्मी मंत्र का जप करने लगा। इससे प्रसन्न हुई भगवती महालक्ष्मी ने राजा को दर्शन दिए और वर मांगने को कहा। राजा प्रणाम पूर्वक नम्रता से बोला—'हे देवि! यदि आप प्रसन्न हैं और मैं वर पाने का पात्र हूं तो मेरे पास इन्द्र से सौ गुणा सम्पत्ति हो जाए। तथास्तु कह देवी लुप्त हो गई।

अति प्रसन्न हुए राजा ने वर प्राप्ति की सूचना मुनि को दी और उसी के निर्देशन में यज्ञ का आयोजन करने लगा। चारों दिशाओं से असंख्य ब्राह्मणों को यज्ञ के लिए बुलाया गया। यज्ञ के प्रारम्भ होने पर आमंत्रित ब्राह्मणों के भोजन के लिए प्रतिदिन सोने के नए बर्तन, पहनने के लिए बहुमूल्य वस्त्राभूषण और शयनार्थ सुकोमल शय्या समूह को जुटाया जाने लगा।

बृहस्पति को जब मरुत राजा के यज्ञ की समृद्धि का पता चला तो उसके मुंह में पानी भर आया और वह दौड़ा-दौड़ा इन्द्र के पास जा कर गिड़गिड़ाने लगा—'हे देव मैं तो दोनों ओर से

मारा गया। आपने यज्ञ किया नहीं और राजा मरुत के आमंत्रण को भी मैंने ठुकरा दिया। आपके आश्वासन के कारण ही मैं मरुत के समृद्धतम यज्ञ में न जा सका था। अतः अब आप ही कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे मैं भी उस मानव यज्ञ में भाग ले सकूं। इन्द्र ने तत्काल अग्नि देव को निर्देश दिया 'हे अग्ने ! तुम अभी जाकर मेरी ओर से राजा मरुत से निर्भय होकर कहो कि अगर तुम ने गुरु बृहस्पति से यज्ञ न करवाया तो सारा देव समूह तुम्हारे यज्ञ में भाग नहीं लेगा और तुम्हारा यज्ञ निष्फल होकर रह जाएगा। तुमने अपनी ओर से भी साफ-साफ कह देना कि तब मैं भी तुम्हारे यज्ञ में डाली आहुति को ग्रहण नहीं करुंगा। इतने पर भी अगर राजा गुरु को बुलाने में आनाकानी करे तो फिर उसे मेरे इस अमोघ वज्र की याद भी करवा देना।'

सम्वर्त मुनि ने इन्द्र की गर्वोक्ति सुन अग्नि देव से कहा—'हे अग्ने ! कान खोल कर सुन ले कि अगर तू और तेरा देव समूह मेरा आह्वान सुन कर मेरे यज्ञ में भाग नहीं लेगा तो मैं अपने तपोबल से एक नयी एव अग्नि प्रचण्ड अग्नि समवर्तानिल का निर्माण करुंगा और उसमे तुम सभी को भस्मसात कर डालूंगा तथा नयी देवसृष्टि का निर्माण कर यज्ञ में उसकी पूजा करुंगा। यदि तेरे सहित सभी देवता भस्म होना चाहते हैं तो भला मैं क्या कर सकता हूँ ? देवता सत्य प्रतिज्ञ होते हैं। अब जैसे तुम्हारा कल्याण हो वैसे ही करो।

मुनि की चेतावनी को सुन अग्नि देव भागा-भागा इन्द्र के पास पहुँचा और सभी कुछ कह सुनाया। सम्वर्त मुनि के तपोबल और सार्थक धमकी को सुन देव समूह सहम सा गया। उसने मुनि द्वारा आवाहान किये जाने पर चुप-चाप यज्ञ में पधार कर अपना भाग स्वीकार किया।

राजा मरुत ने जैसा यज्ञ किया वैसा कोई भी न कर सका था। उस यज्ञ में ब्राह्मणों द्वारा भोजन कर लेने पर उनकेझूठे सौवर्णिक पात्रों को प्रतिदिन उत्तर दिशा की ओर फैंक दिया जाता था। इन जूठें बर्तनों का ढेर बढ़ता-बढ़ता पहाड़ ही बन गया और उसका स्वामी भी कोई न था।

महाभारत का युद्ध समाप्त होने बर भगवान व्यास ने युधिष्ठर को यज्ञ करने का परामर्श दिया था किन्तु युधिष्ठर ने यज्ञ सम्पादन में असमर्थता प्रकट की और कहा कि इस समय युद्ध के कारण कोष खाली पड़ा है तथा युद्ध की मार से पीड़ित प्रजा भी अधिक कर देने में असमर्थ है। अतः सम्प्रति इस विचार को छोड़ देना चाहिए।

अर्थात् धन की समस्या को सुलझाते हुए व्यास जी ने कहा राजन्। महात्मा मरुत के यज्ञ में फैंके गए सोंने के झूठे बर्तनों का विशाल पहाड़ हिमगिर में पड़ा है उसे ले आओ यज्ञ के लिए वहीं पर्याप्त होगा (म०भा०, आश्व ३.२१) इसी स्वर्ण से यज्ञ किया भी गया।

कांगड़ा के संगम तीर्थ पर स्नान और वज्रेश्वरी मन्दिर में जप करने से राजा मरुत को अतुल सम्पत्ति मिली थी। अत: जालन्धर पीठ की यात्रा करते समय उक्त संगम तीर्थ पर स्नान और वज्रेश्वरी मन्दिर में पूजा अवश्य करनी चाहिए।

साधु आश्रम
होशियारपुर 146021

हिमाचल के सिरमौर जनपद में देवी पूजा

● रत्न चन्द शर्मा

सृष्टि के आरंभ से ही शक्ति का स्थान मुख्य रहा है। उसकी मान प्रतिष्ठा व पूजा अनेक प्रतीकात्मक रूपों में होती रही है। यही शक्ति कहीं नारी तो कहीं जननी के श्रद्धावनत हो कर, श्रद्धालु कामना भेद इसके विभिन्न रूपों की उपासना करते हैं। वैदिक युग में इस शक्ति का आदरणीय और महनीय स्थान था। ऋग्वेद के अनेक सूक्त इसकी स्तुति के प्रमाण है। प्राग्वैदिक काल में भी शिमला घाटी से कठियवाड़ तक फैली द्रविड़ सभ्यता में शक्ति (देवी) पूजा के बहुत से चिन्ह उपलब्ध होते हैं।

यह शक्ति यद्यपि सबकी अधीश्वरी है तथापि कभी हिमालय की तपस्या और प्रार्थना से प्रसन्न होकर उनकी पुत्री—पार्वती रूप में तो कभी कात्यायन ऋषि के आश्रम में उनकी कन्या कात्यायायन बनकर एवं मातृभक्ति के रूप में स्कन्द माता बन कर प्रकट हुई है। यही शक्ति महा काल को भी कवलित करने की क्षमता से 'काल यात्री' तथा भक्तों की अभीष्ट कामनाओं की पूरक 'सिद्धिदात्री' रूप में पूजी जाती है। अतएव एक ही शक्ति के अनेक नाम और रूप हैं।

हिमाचल प्रदेश में इस शक्ति अथवा देवी की अनेक उपासना पद्धति प्रचलित हैं। यहां हिन्दू शास्त्रों के आधार पर दुर्गा, काली, पार्वती, कालिका, अष्टभुजा ज्वालामुखी आदि नाम एक ही देवी के पर्याय हैं। कुछ नाम प्रत्येक क्षेत्र व स्थान के आधार पर स्वतन्त्र हैं। ये देवियां नवकोटि (नौ करोड़) अथवा नौ श्रेणियों में विभाजित हैं। कन्या पूजन में इन्हीं देवियों को प्रतीक मानकर पूजा जाता है। अतएव चैत्र शुक्ल तथा अश्विन शुक्ल पक्ष के नवरात्रों में देवी पूजन विशेष रूप से किया जाता है। कुछ लोग तो प्रतिमास शुक्ल पक्ष की अष्टमी को व्रत रखते हैं। कहीं-कही आटे के बनाए हुए दीपों में ज्योति प्रज्वलित की जाती है। प्रतिदिन अपने घरों में देसी घी का दीपक जलाने की परम्परा भी है। नवरात्रों में स्वयं अथवा ब्राह्मण द्वारा अनुष्ठान संपन्न करने की रस्म है। कन्याओं को मिष्ठान्न अथवा हलवा खिलाया जाता है। पंचोप चारों से इनकी पूजा की जाती है।

हिमाचल में बलि की भी परम्परा है। यद्यपि कुछ क्षेत्रों में इसका प्रचलन बन्द भी हो रहा है। सामान्यत: बलि के लिए हृष्ट पुष्ट बकरा ही उपयुक्त समझा जाता है।

सिरमौर जनपद की देवियों के प्राकट्य तथा मन्दिरों के निर्माण के साथ अनेक घटनाओं, जन श्रुतियों व आख्यानों ने पौराणिक पद्धति के सदृश ही अपना ताता-बाना बुना है। जिनसे तत्स्थानीय जन जीवन की आस्था का स्पष्ट चित्र सामने आता है।

लाना खाना : में ज्वालामुखी (कांगड़ा की देवी का अविर्भाव माना जाता है। यहां ज्वाला मुखी के मन्दिर की भांति मान्यता है। इस देवी मन्दिर के साथ एक प्रचलित जनश्रुति जुड़ी है। कहते हैं एक बार महन्त इतवार नाथ हरद्वार गए थे, वहां उनको देवी के दर्शन हुए। जब वे वहां से जाने लगे तो महन्त ने देवी से पूछा कि अब उसके दर्शन कब होंगे। देवि ने कहा कि वह दो वर्ष के पश्चात् उससे खाना में मिलेगी। देवी ने उसके मुख में प्रवेश किया, महन्त इस बात से अनभिज्ञ था, उसने हाथ से अपने मुंह पर चांटा मारा और मुंह को जोर-जोर से पीटने लगा। महन्त की अनभिज्ञता के कारण देवी महन्त के पास से नाराज होकर चली गयी। उसी समय आस-पड़ोस का जंगल अग्नि काण्ड की लपेट में आ गया। लोगों ने विचार किया कि यह महन्त कोई दुरात्मा है जिसने देवी को क्रोधित किया है। इस रहस्य की वास्तविकता जानने के लिए ब्राह्मणों को बुलाया गया। उन्होंने देवी के प्राकट्य की सारी वस्तुस्थिति से सबको अवगत किया। कहा जाता है कि उस अग्निकाण्ड से उस जंगल के पत्थर आज तक काले हैं। तदन्तर उस स्थान का शुद्धि-करण किया गया और एक देवी मन्दिर बना। एक ब्राह्मण को पुजारी के रूप में नियुक्त किया गया। प्रत्येक रविवार तथा संक्रान्ति के दिन देवी को भोग लगाया जाता है। अश्विन-शुक्ल अष्टमी को मेला लगता है।

नगर कोटी देवी : शाया पजोठा और शरौली में नगर कोटी देवी के मन्दिर हैं। सुनते हैं कि पाण्डव अपनी कैलास यात्रा से लौटते हुए शाया पजोठा में कुछ समय के लिए ठहरे थे, उन्होने यहां देवी के मन्दिर का निर्माण करवाया था। कुछ लोगों के अनुसार वे देवी को यहां लाए थे। इस मन्दिर की एक विशेषता है कि इसका द्वार दक्षिण की ओर है। शुक्ल पक्ष की अष्टमी को यहां भेटे चढ़ाई जाती। सपारा' में भी नगरकोटी देवी का मन्दिर है। यही नगर कोटी देवी दलाहान में दलाहान देवी के नाम से पूजित होती है।

बिलनान में भारती देवी का निवास माना जाता है। जिसके विषय में किम्वदन्ती है कि इस देवी को केदार नाथ बदरी नारायण से लाया गया है। इसे कुसवी देवी भी कहते हैं। लाई की पहाड़ी पर भेरा रगड़ दस्यु का बनवाया एक देवी का मन्दिर है। प्रत्येक मास की संक्रांति, प्रत्येक रविवार तथा नवरात्रों में यहां देवी की विशेष पूजा अर्चना होती है। असंख्य श्रद्धालु यहा मनौतिया चढ़ाने आते हैं. देवी भंगाई का मंदिर घार गांव मे है। यह एक लिंग मन्दिर है जो युग के उत्तर में एक मील की दूरी पर स्थित है। एक जनश्रुति के अनुसार कहते है कि कुछ ग्वाले

जंगल में पशुओं को चरा रहे थे। बच्चों ने वहां एक नुकीला पत्थर देखा, उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। अगले दिन जब देखा तो वे सब टुकड़े आपस में जुड़े थे। कहीं भी अलग होने का कोई चिन्ह नहीं था। यह घटना अनेक बार घटी। लोगों ने उसे एक देवी और चमत्कारिक घटना समझा तथा देवी शक्ति से प्रेरित व प्रभावित हो कर वहां मन्दिर का निर्माण करवा दिया। ढ साकना के लोग आज भी इस घटना को सश्रद्ध सुनाते हैं। यह लिंगमयी देवी की प्रतिमा चार इंच उंची और चार इंच परिधि की है। इसे ही देवी भंगाई के नाम से जाना जाता है। इस देवी को वस्त्र आभूषण नहीं पहनाते हैं। पुजारी की भी विशेष व्यवस्था नहीं है। यात्री अपने साथ निजी ब्राह्मण पुजारी को ही साथ लाया करते हैं। दूध और घी के अतिरिक्त बकरे भी भेंट में चढ़ाये जाते हैं। आषाढ़ मास की भिन्न-भिन्न तिथियों को यहां मेलों का आयोजन होता है। इन मेलों के अवसर पर बिजाई और घटरियाली देवियां भी सम्मिलित होती हैं। इन मेलों में मोजेस, ठकरी ढसाकना के लोग भी देवी दर्शनाथ पहुंचते हैं।

बाइला में नयना देवी की पूजा का आयोजन होता है। इस देवी के पुजारी भाट परिवार से संबन्ध रखते हैं। यहां भाटों के बहुत परिवार है। प्रत्येक परिवार क्रमश: एक-एक महीने के लिए अपना पुजारी का दायित्व निभाता है। इसके बदले में उसे आस-पड़ोस के गांव की उपज पर अनाज मिलता है। यदि कोई पुजारी कर्तव्य निष्ठा व ईमानदारी से अपने उत्तरदायित्व का पालन नहीं करता तो उसे फसल के भाग से वंचित रखा जाता है। इस देवी की यह एक विशेषता है कि यहां कोई मन्दिर नहीं है। देवी की मूर्तियां भाट के घर में रखी जाती है। इस देवी की असली मूर्ति क्योंथल से लाई गई बताई जाती है। जिसे भाट के घर में रखा गया था। इसीलिए लोग इसे किसी अन्य स्थान पर नहीं ले जाते। यहां अनेक मूर्तियां है परन्तु जो सबसे पुरानी है उसकी स्थापना की गई है। यह लगभग एक फुट ऊंची है। भुजाएं चार हैं, देवी के उपरि अर्ध शरीर को ही पत्थर पर उत्कीर्ण करके बनाया गया है। सिर पर चांदी का छत्र रहता है चांदी के आभूषण तथा पालकी भी है। सावन मास के प्रथम तीन दिनों में गांव के ऊपर की रानवी धार में मेला लगता है। जिसमें कराली और निकटवर्ती गांव के लोग एकत्रित होते हैं। लोग यहां नाचते और गाते हैं। मेले की प्रत्येक सांय को देवी की मूर्ति थौथा मशवा और टटियाना गांव में दर्शन देती है। परन्तु दिन के समय मेले में रहती है। यहां यह विश्वास किया जाता है कि यदि हैजा या अन्य महामारी किसी गांव में फैल जाती है तो इस मूर्ति को उस गांव में ले जाने से रोग मुक्ति हो जाया करती है।

ला देवी बंगला टोका के समीप जंगल मे एक पुराना छोटा सा मन्दिर है। इसमें देवी की मूर्ति है। हिन्दू और मोहम्मडन गूजर इस देवी की समान रूप से पूजा करते हैं। प्रत्येक मास की संक्रान्ति के दिन यहां मेला लगता है। सन् 1823 के लगभग भोज मजगा के लोगों ने त्रिलोकपुर के शकुर में इस नई देवी के प्रकट होने की घोषणा की थी। लोगों ने मिल कर इस देवी के मन्दिर का निर्माण करवाया। इस देवी का पुजारी कनैत जाती से संबन्ध रखता है। वह विशेष दिन

मन्दिर में देवी की पूजा करता है, मन्दिर से बाहिर आकर नाचता व गाता है, वहां उपस्थित लोग जय-जय के नारों से उसका स्वागत करते हैं तथा उसके आगे नतमस्तक हो जाते हैं। वह अर्ध चेतन अवस्था में लोगों के दुःखों, पीड़ाओं, बीमारियों एवं उनके उपचारों की भविष्यवाणियां करता है।

क्वाग नामक धार पर स्थित देवी की केवल भाट ही पूजा करते हैं। भाट देवी के सम्मान में नाचते हैं। पूजा का ढंग ला देवी की तरह ही है। इसी तरह बेगली देवी की सिमलाशन में पूजा होती है। 'कुंडी' देवी का मन्दिर दूदम व सील पच्छाद में विद्यमान है। इसके सम्बन्ध में एक गाथा जुड़ी है। सूर प्रकाश सिरमौर का राजा अंधा था, नेरी जगोला में रहता था। उसकी एक पुत्री थी। राजा ने मुगल सम्राट को कर देना बन्द कर दिया। सम्राट ने राजा के विरुद्ध सेना भेजी। राजा की ओर से सेना का नेतृत्व राजकुमारी ने किया। सिरमौर सेना को सम्राट के सैन्य बल से पराजित होना पड़ा। पर्याप्त जन बल का संहार हुआ। राजकुमारी उसी युद्ध में काम आई। राजा का पुरोहित वीर गति प्राप्त उस वीरांगना के सिर को दूदम में ले आया। वहां एक मन्दिर बनवाया गया। उसी राजकुमारी की देवी के रूप में पूजा शुरू कर दी। एक अन्य धारणा के अनुसार राजकुमारी दिल्ली में मुगल सेना के विरुद्ध लड़ती हुई ही मारी गई थी। पुरोहित ने निश्चित स्थानों पर उसे ढूंडने का प्रयत्न किया। अन्त में उसे एक मूर्ति मिली जो इस समय मन्दिर में प्रतिष्ठापित की हुई है। दीपावली से पूर्व एकाशी के दिन यहां मेला लगता में। उस दिन मूर्ति को सिंहासन पर आसीन किया जाता है। आषाढ़ मास के प्रत्येक रविवार को भी ऐसा ही किया जाता है।

बाला सुन्दरी : बाला सुन्दरी का प्रसिद्ध मन्दिर त्रिलोकपुर में है चैत में इस देवी के सम्मान में बहुत बड़ा मेला लगता हैं। यहां बलि देने की भी प्रथा है। पंजाब और हरियाणा के लोग इस देवी के दर्शन के लिए उपस्थित होते हैं।

कटासन देवी का मन्दिर बड़ाबन में स्थित है। यह नाहन से दक्षिण की ओर पौंटा साहिब सड़क पर स्थित है। कहते हैं कि राजपूतों और गुलाम कादिर, रोहिला के मध्य युद्ध हुआ। एक स्त्री राजपूतों की ओर से लड़ी। मुहम्मदों के पांव उखड़ गए। राजपूतों का विजयश्री ने वरण किया। यहीं पर राजपूतों की विजय की स्मरण स्मृति में मन्दिर का निर्माण करवाया था। चैत्र और अश्विन मास के नवरात्रों में यहां मंदिर में हवन व पूजापाठ होता है। यहां बहुत बड़े मेले का आयोजन होता है।

सिरमौर जनपद में शीतला देवी को 'चेचक रोग निवारिणी माना जाता है। नाहन में शीतला षष्टी का मन्दिर है। यहां प्रत्येक नवजात शिशु को शीतला देवी के पास चेचक रोग के भय से मुक्ति के लिए लाया जाता है। चैत्र कृष्ण षष्टी के सिरमौर क्षेत्र के दूर-दूर के श्रद्धालु यहां पहुंचते हैं। नाना प्रकार के पकवान भेंटे चढ़ाई जाती है। पूजा सामग्री की सफाई मजदूर

आपस में बांट लेते हैं। मुर्गी को उड़ाने की परंपरा भी है। मुर्गी को शीतला देवी का प्रतीक समझा जाता है।

सिरमौर में उपरोक्त प्रमुख मंदिरों के अतिरिक्त और भी कई देवी मंदिर हैं। उनके साथ भी कोई न कोई कथानक जुड़ा हुआ है। आज भी अनेक स्थानों पर किसी व्यक्ति विशेष के पास देवी का प्रकट्य होता है। वहीं मंदिर बनवा दिया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ लोग सश्रद्ध भी मंदिरों का निर्माण करवा रहे है। इन मंदिरों के साथ हिमाचल की संस्कृति, जन आस्था, लोक विश्वासों और मान्यताओं का स्पष्ट चित्र सामने आता है। कुछ देवी मंदिरों के प्रति हिन्दू और मुस्लिम समान श्रद्धा रखते है। धर्माव लंबियों में पारस्पारिक भ्रातृभाव धर्म सहिष्णुता का यह प्रतीक है। इससे हिमाचल का देव-भूमित्व भी स्पष्ट है।

राजकीय उच्च विद्यालय
बड़ा. जिला हमीरपुर (हि. प्र.)
पिन.—177044

शोध प्रबन्ध का सार संक्षेप

● डा० कोमल कुमार कोहली

डा० प्रकाश चन्द बरुग्रा के निर्देशन में डा० कोमल कुमार कोहली द्वारा लिखित तथा मेरठ विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध प्रबन्ध का सार संक्षेप

भारत मे भित्ति चित्रण परम्परा का इतिहास बहुत प्राचीन है। प्रागैतिहासिक कालावस्था से ही आदि मानव ने अपनी अमूर्त भावनाओं को मूर्त रूप प्रदान करने हेतु भित्ति चित्रों का सहारा लिया था। इसीलिए मानव इतिहास में चित्रकला का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान सदा से ही रहा है। पुराणों में भी इसकी महत्ता स्वीकृत है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में चित्रकला की जो व्याख्या की गई है उसमें उसका सांगोपांग वर्णन मिलता है—

यथा सुमेरू प्रवरो नगानाम्,
यथो खगानां गरूड प्रधान:
यथा नराणाम् प्रवर: क्षितिपति:
स्तथा कलानामिह चित्रकल्प: ।।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण चित्र सूत्र 43/38-39 अर्थात् जिस प्रकार पहाड़ों में सुमेरू श्रेष्ठ है, पक्षियों में गरूड़ प्रधान है। नरों में राजा का स्थान श्रेष्ठ है, उसी प्रकार कलाओं में चित्रकला सर्वोपरि है।

समरांगण सूत्रधार में भी चित्रकला को सारे शिल्पों (कलाओं) में प्रमुख माना गया है। इस कला से सभी प्रकार के व्यक्ति आनन्दित होते हैं। उसमें कहा गया है—

"चित्रं हि सर्व शिल्पानाम् मुखं लोकस्य च प्रियम्" भारत में कला को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति का साधन माना है। यही कारण है कि भारतीय कला सदा से ही धर्म प्रधान एवं धर्म द्वारा आविर्भूत रही है। भारत में अजन्ता और बाघ आदि गुफाओं को विश्व प्रसिद्ध भित्ति चित्र परम्परा को मध्य काल से लेकर वर्तमान शताब्दी तक जीवित रखने का श्रेय पहाड़ी चित्रकारों

को ही है। कला का इतना व्यापक आन्दोलन शायद संसार में कहीं नहीं हुआ, जितना कि पश्चिमी हिमालय के विभिन्न राज्यों में हुआ। यहां के राजपूत शासक राजस्थानी राजपूत राजाओं की तरह कला प्रिय रहे। यह स्थान प्राकृतिक सुषमा एवं एकान्त होने के कारण यहां के राजाओं और कलाकारों के लिए कला-सृजन अत्यन्त अनुकूल बन गया। पहाड़ी चित्र कला की नूरपुर (कांगड़ा) शाखा ने इस अनुपम थाती को जहाँ वास्तुशिल्प एवं लघु चित्रों में अंकित किया, वहीं भित्ति चित्रों में संरक्षण एवं प्रोत्साहन के फलस्वरूप मन्दिरों, मठों और राजभवनों की भित्तियों पर भी स्थान पाया। यहां के प्राचीन भित्ति चित्र आज अपनी आभा खो चुकने के बाद भी पूर्वकालीन वैभवता का परिचय देते हैं। यहां के चित्रों को बसोहली व कांगड़ा से प्रभावित ही माना जाता रहा। इसके बाद इस क्षेत्र में हुई अनेक खोजों ने नूरपुर शैली को एक अलग स्कूल के रूप में स्वीकार किया। इस दृष्टि से नूरपुर क्षेत्र भित्ति चित्रों का एक प्रमुख केन्द्र माना जा सकता है जो भारतीय भित्ति चित्रकला इतिहास में सुदृढ़ कड़ी के रूप में अपना महत्व रखती है।

समस्त शोध प्रबन्ध को मुख्यत: आठअध्यायों में विभाजित किया गया है। (क) पहले अध्याय में नूरपुर राज्य की हिमालय में स्थिति, पहाड़ी क्षेत्रों में नूरपुर की भित्ति चित्रण परम्परा, स्थिति संस्कृति और अन्त में उपसंहार रखा गया है। मूलत: ऐसा इसलिए किया गया है जिससे नूरपुर राज्य की स्थिति स्पष्ट हो जाए। (ख) दूसरे अध्याय में नूरपुर राज्य की भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ वहां के शासकों की राजनैतिक गतिविधियां, सामाजिक जन जीवन एवं धार्मिक जीवन की आस्था पूर्ण संस्कृति का उल्लेख इस अध्याय में किया गया है। (ग) तीसरे अध्याय में नूरपुर राज्य में प्राप्त भित्ति चित्रों के स्थान सर्वेक्षण द्वारा भ्रमण करके कुछ नवीन तथ्यों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। (घ) चौथे अध्याय में नूरपुर राज्य के भित्ति चित्रों का वर्गीकरण तथा विषय वस्तु आदि का क्रमानुसार अध्ययन इस अध्याय में व्याख्याओं के साथ विवेचित किया गया है। (ङ) पांचवे अध्याय में तत्कालीन भित्ति चित्रों के चित्रकारों के समाज में स्थिति अनेक कार्य के महत्व को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसी अध्याय में भित्ति चित्रों के संरक्षकों के विषय में प्रमाण आदि सहित उनकी कलात्मक अभिरूचियों को प्रकाश में लाया गया है। (च) छठे अध्याय में यहां के भित्ति चित्रों के निर्माण पद्धति रचना तकनीक, कला एव शिल्प पक्ष की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए उनका कलात्मक प्रस्तुत किया गया है। (छ) सातवें अध्याय में यहां के भित्ति चित्र और अन्य पहाड़ी शैली के भित्ति चित्रों के मध्य एक तुलनात्मक अध्ययन को सौन्दर्य विधान द्वारा स्पष्ट किया गया है। (ज) आठवें अध्याय में पहाड़ी कला को एक स्थानीय शैली के रूप में, नूरपुर राज्य के भित्ति चित्रों का महत्व एवं भारतीय चित्रकला के क्षेत्रों उसके योगदान आदि को स्पष्ट किया गया है।

नूरपुर राज्य की स्थिति और उसका इतिहास : प्राचीन काल में नूरपुर एक छोटा सा राज्य था, जो अब कांगड़ा की तहसील मात्र है। यह क्षेत्र दक्षिण 31°58 और 32°24 तथा 75°36 और

76.9 पूर्व के भाग मे स्थित है जोकि 519 वर्गमील के क्षेत्र में फैला हुआ है। नूरपुर तहसील कांगड़ा जिले के उत्तर पश्चिम में है तथा इसके उत्तर में चम्बा राज्य, पश्चिम में गुरदासपुर, दक्षिण में होशियारपुर जिला तथा पूर्व में देहरा और कांगड़ा है, चक्की नदी ब्यास के साथ इसके दक्षिण भाग में बहती है जो तहसील की दक्षिण सीमा बनाती है। कांगड़ा के समान यहां के सारे गांव पहाड़ियों से युक्त है।

भारतीय चित्रकला का इतिहास भित्ति चित्रों से ही आरम्भ हुआ। गुहावासी आदि मानव से लेकर आधुनिक काल तक भारत में भित्ति चित्रण परम्परा सरस्वती नदी की भांति कभी छिपती तो प्रकट होती हुई प्रवाहित हुई। पहाड़ी शैली ने अपनी पूर्ववर्ती काल के अजन्ता बाघ, बादामी, सित्तन वासल और राजस्थानी विश्व प्रसिद्ध भित्ति चित्रण की महती परम्परा को न केवल अपनाया वरन् उसे वर्तमान शताब्दी तक जीवित भी रखा। पहाड़ी क्षेत्र में भित्ति चित्रकला के अपूर्व भण्डार नूरपुर राज्य के विभिन्न प्राचीन भवनों में चित्रित मिले हैं जिनमें भित्ति चित्रों के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण नूरपुर, फतेहपुर और डमटाल में उपलब्ध हुए हैं। प्राचीनता के आधार पर फतेहपुर के ठाकुर द्वारा (नृसिह मन्दिर) में बने भित्ति चित्र सबसे प्राचीन है। जिनका निर्माण नूरपुर के राजा मान्धाता (1661-1700) के काल में हुआ था। इसके उपरान्त नूरपुर के ब्रजराज स्वामी मन्दिर में प्राप्त भित्ति चित्र है। जिनका सृजन राजा दयाधाता (1700-173्ई) के काल में हुआ। डमटाल के मठ में स्थित गोपाल मन्दिर में भी भित्ति चित्रों का विशाल भण्डार दर्शनीय है जिनका निर्माण काल राजा वीर सिंह (1805-1846ई.) के समय में हुआ। शैली की दृष्टि से इनके समय में चित्रित कार्य के अतिरिक्त कुछ भित्ति चित्र बाद में निर्मित हुए प्रतीत होते है।

विषय वस्तु एवं संस्कृति

नूरपुर एवं क्षेत्र के भित्ति चित्रों की प्रमुख विषय वस्तु धार्मिक है। इसकी विभिन्न प्रतिच्छायाए अवसर के अनुसार ऐसी शैली मे व्यक्त की गई है जिनमें सौन्दर्य गरिमा और जीवन्त शक्ति का अभूतपूर्व सामंजस्य है। इन भित्ति चित्रों में राधा और कृष्ण तथा पार्वती और शिव के प्रेम से सम्बन्धित विषयों के दर्शन होते है। कंस का अखाड़ा विषयक चित्र, जिसमे बाजे वाले तथा सैनिक भी दिखाए गए। कंस दरबार में पहलवानों के चित्र अनुपात में विशाल आकार के बनाए गए है। देवताओं को साधारण सांसारिक व्यक्ति के रूप में दर्शाया गया है, परन्तु उनमें एक ऐसी शोभा अभिव्यक्त की गई है, जो उन्हें देवत्व प्रदान करती है। राम विवाह से लेकर राम बनवास व राजतिलक तक के समस्त घनटाक्रमो को चित्रकार ने भित्तियों पर सुसज्जित किया है।

नूरपुर क्षेत्र में निर्मित भित्ति चित्र अधिकांशतः भागवत पुराण, महाभारत तथा रामायण पर ही बने हैं। इनके अतिरिक्त नायिका का विभिन्न मुद्राओं में चित्रांकन राजमहलों, भवनों, युद्धों एवं शिकार आदि का चित्रण भी कुशलता से किया गया है। इन सभी चित्रों की पृष्ठभूमि में

हमें नूरपुर क्षेत्र की संस्कृति और वहां के निवासियों का सामाजिक जीवन स्पष्ट दृष्टि गोचर होता है। यहाँ के चित्रों में पशु पक्षियों का चित्रण बहुत ही सुन्दर एवं भावपूर्ण ढंग से हुआ है। वे मूक होते हुए भी अपनी और आकर्षित किये बिना नहीं रहते।

नूरपुर घाटी के निवासियों का रूप सौन्दर्य और प्राकृतिक रमणीयता के समन्वय से जो रूप सामंजस्य उपस्थित हुआ उसे यहाँ के चित्रकारों ने यथावत रूप में भित्ति चित्रों को देखकर बरबस ही हम मुग्ध हो जाते हैं, क्योंकि वे जीवन की अनुभूतियों का स्पर्श करते हैं।

पहाड़ी क्षेत्रों में नूरपुर राज्य का सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यहां पर भी अन्य क्षेत्रों की भांति लोकगीतों, लोककथाओं व लोक कलाओं (नृत्य, भित्ति चित्रण, मेहन्दी आदि) का जन जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यहां के विभिन्न लोकोत्सव, पर्व एवं मेले किसी न किसी प्रकार की धार्मिक, ऐतिहासिक और सामाजिक विचार धाराओं को प्रतिबिम्बित करते हैं। मूलतः यहां की प्राचीन संस्कृति राजपूती शासक होने के कारण वीर संस्कृति है। इसके कारण कण-कण में वीरों के बलिदान की कहानी, लोक कथाओं, लोकगीतों लोक कलाओं आदि का विषय बना। नूरपूर क्षेत्र का अधिकांश लोक साहित्य आज भी यहां के सरल ग्रामीण नर-नारियों की जबान पर है, जो उन्होंने पीढ़ी दर पीढ़ी अपने पूर्वजों से सुनकर स्मरण किया है।

नूरपुर राज्य के भित्ति चित्रों में इस क्षेत्र की संस्कृति का दिग्दर्शन होता है। यहां की वीर संस्कृति, धर्म परायण मर्यादाएं, बलिदान और त्याग की गरिमा के साथ बन्धुत्व, सह अस्तित्व तथा धर्मिक सहिष्णुता आदि का क्रमानुसार अकंन देखने को मिलता है। जहां यह विशुद्ध भारतीय संस्कृति को अपनाए है वहां उसमें मुगलों के सुमधुर सम्बन्धों के कारण मुस्लिम संस्कृति को प्रति आग्रह भी स्पष्ट झलकता है। यहां के इतिहास से यह स्पष्ट हो जाता है कि जहांगीर और शाहजहां के शासन काल में नूरपुर के राजाओं का उनके साथ मधुर सम्बन्ध होने के परिणाम स्वरूप इन दोनों ने पारस्परिक सांस्कृतिक आदान प्रदान किया। नूरपुर के भित्ति चित्रों में यहां के स्थापत्य प्रारुपों तथा वस्त्र आभूषणों में दोनों संस्कृतियों का मिला जुला रूप इसका स्पष्ट प्रमाण है। इस प्रकार नूरपुर राज्य की संस्कृति, वहां के रीति रिवाज, वहां की धार्मिक मान्यताएं एवं विश्वास आदि को तत्कालीन चित्रकला में रूपायित किया। कालान्तर मे सिक्ख एवं अंग्रेजी प्रभावों के कारण उनके रीति रिवाज, परिधान, अथवा कायदे आदि को भी नूरपुर, क्षेत्र के भित्ति चित्रों मे देखा जा सकता है।

तुलनात्मक अध्ययन के आधार : पर यह कहा जा सकता है कि नूरपुर राज्य के भित्ति चित्र पहाड़ी शैली के अन्य भित्ति चित्रों से अधिक कलात्मक व उच्च स्तर के हैं। यहां के भित्ति चित्र अन्य शैलियों से प्रभावित होने पर भी अपनी अलग पद्धति एवं परम्परा को प्रदर्शित करते है, जो

विशेष रूप से सराहनीय है। यद्यपि तत्कालीन समय में समस्त पहाड़ी केन्द्रों पर भित्ति चित्रांकन हो रहा था, जिसमें अनेक शैलियां अपने स्थानीय तत्वों को ग्रहण कर आगे बढ़ने का प्रयास कर रही थी, लेकिन नूरपुर एक ऐसा केन्द्र था जहां चित्रांकन कार्य सबसे पहले प्रारम्भ हुआ परन्तु अधिक मात्रा में नहीं हुआ वरन् जितना भी हुआ उसमें परम्परागत भारतीय तत्वों की झलक दिखाई पड़ती है और अजन्ता के समीप इस शैली ने समस्त पहाड़ी शैली के भित्ति चित्रों को प्रभावित करके अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया। कांगड़ां, चम्बा, कुल्लू, मण्डी और बसोहली जो पहाड़ी कला की प्रमुख शैलियां है। उन्होने भी नूरपुर से कुछ कलात्मक तत्व ग्रहण करके अपनी कलात्मकता का चित्रों में खामोश करके चित्रांकन किया।

भारतीय भित्ति चित्रकला के परिप्रेक्ष्य में नूरपुर शैली का योगदान इस बात में निहित है कि वह अपने सम सामायिक सभी कला आन्दोलनों को समेटे हुए निरन्तर राजाश्रय पाकर पनपती रही। भित्ति चित्रण की इस महान परम्परा मे अजन्ता, चित्रकला धाती को पुन: जीवित किया और उसे कुछ ही विशिष्ट भवनों-मन्दिरों तक ही सीमित न रखकर घर-घर में जनमन को अपनी रसमय धारा से अप्लावित किया। नूरपुर राज्य के भित्ति कोष न केवल पहाड़ी क्षेत्र में वरन् भारतवर्ष के चित्रकला इतिहास में अपना एक महत्वपूर्ण योगदान रखते है। इन भित्ति चित्रों में यहां की सांस्कृतिक परम्परा, धार्मिक विश्वास तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं का सामाजिक परिप्रेक्षय में क्रमश: चित्रण हुआ है। इस क्रम में नूरपुर क्षेत्र के उन्नीसवीं शताब्दी मध्य कालीन के चित्रकला के भित्ति चित्र तो एक प्रकार से लघुचित्र शैली के पतनावस्था में भित्तियों पर लघुचित्र अंकित किए गए। इस पहाड़ी शैली के कलात्मक धारा को बीसवीं शताब्दी तक अग्रसर करने का श्रेय भी नूरपुर क्षेत्र को प्राप्त होता है। इस दृष्टि से यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि नूरपुर क्षेत्र का कला वैभव न केवल पहाड़ी क्षेत्र को गौरवान्वित करता है वरन् समस्त भारतीय भित्ति चित्रकला की मान्य परम्पराओं को निभाते हुए बीसवीं शताब्दी तक ले आती है। इस दृष्टि से नूरपुर राज्य की कला का महत्व ओर भी बढ़ जाता है। भारतीय भित्ति चित्रकला के लिए इसका योगदान सदैव प्रशंसनीय एवं स्मरणीय रहेगा।

राज भवन, पार्क रोड़
दी माल, सोलन
हिमाचल प्रदेश

हिन्दी शोध

● डा० जोगेश कौर

हिन्दी-शोध करते समय हमें कुछ नियमों का पालन करना आवश्यक है। जिससे शोध उच्चकोटि का बन सकता है। इस लेख में मैं "शोध-प्रबन्ध की योजनाबद्धता" पर कुछ अपने विचार एवम् कुछ नियम आदि बताती हुई कलम द्वारा पाठकों या श्रोताओं तक पहुंचाने की कोशिश करुंगी।

शोध-कार्य का विचार मन में आते ही शोध तन्त्र से अपरिचत शोधार्थी अनेक शंकाओं एवम् आशंकाओ में डूब जाता है।

—शोध क्या है ?
—साहित्यिक शोध का स्वरूप क्या है ?
—उसकी वैज्ञानिकता क्या है ?
—आदर्श शोध क्या है ?
—शोध के प्रमुख तत्व कौन-कौन से हैं ?
—शोध-विज्ञान का का चयन कैसे किया जाता है ?
—शीर्षक सरंचना के सिद्धान्त क्या है ?
—शोध-विषय का व्यक्तित्व कैसे मूर्त होता है ?
—रूपरेखा का निर्माण कैसे किया जाता है ?
—सामग्री का संकलन कैसे किया जाए।
—सामग्री का विश्लेषण—विश्लेषण कैसे किया जाए ?
—संदर्भ-निर्देश की उत्तम-उपयोगी विधि क्या है।
—मौलिकता का अर्थ क्या है ?
—उद्देश्य ?
—शोध-प्रबन्धक की सतर्कताएं क्या हैं ?
—पाश्चातानुबंध और पूर्वानुबंध से क्या अपेक्षाएं हैं ?

इसी तरह से कई प्रश्न बार-बार मन में उठते हैं। जिनका उत्तर साधारणतया कहीं नहीं मिलता है। आधुनिक युग में शोध की गति तीव्र है। इसलिए यह मैं कर्त्तव्य समझती हूँ कि ऐसी सर्वेक्षण विधि का उल्लेख करूं जो शोधार्थियों के लिए मार्ग दर्शन करें। भले ही शोधार्थी किसी भी विषय या वर्ग के हों।

प्रस्तुत लेख में, मैं "शोध-प्रबन्धक की "योजनाबद्धता" के अन्तर्गत निम्नलिखित विषय के आधार पर ही प्रबन्ध की योजनाबद्धता पर कार्यन्वित रूप से विचार किया जा सकता है।

१. समस्या का निश्चयन
२. समस्या का सीमाकन
३. समय-सारिका
४. स्रोत सामग्री
५. अनुक्रमणिकता
६ सामग्री का एकत्रीकरण
७. कार्यात्मक पुस्तक सूची
८. सामग्री की टिप्पणियां या सार एकत्रीकरण करना की विधि।

समस्या का निश्चयन विषय का चयन या निश्चयन ऐसी आधारशीला है, जिस पर अनुसंधान के सभी सभी पक्ष आधारित होने अनिवार्य हैं, क्योंकि सामान्य झुकाव के अनुसार आरम्भ में महत्वकांक्षा प्रबल रहती है, और अन्ततो वह अस्तव्यस्तता में परिणत हो सकती है। इससे विषय के प्रतिपादन की विधि के विकलांग बन जाने की सम्भावना हो सकती है। अनुसंधान प्रतिवधि में यह अनिवार्य है कि महत्वपूर्ण और आवश्यक सूचनाएं छूटने न पाएं, और अपेक्षित साक्ष्य को पूर्णतय: (अंशत: नहीं) प्रस्तुत किया जाए। जिसमें तथ्य विश्वासनीय उद्घाटन हो।

आरम्भ में विषय का निश्चयन कर लेना व उस पर समय लगा लेना उपयोगी निदेश है। क्योंकि इससे निर्धारित विषय अपना स्पष्ट रूप व आकार ग्रहण कर लेगा। उसमें प्रत्येक आवश्यक पक्ष सम्मिलित हो जाएगा। शोध प्रबन्ध के प्रतिपादन में आधारभूत पक्षों को सीमित रखकर भी तथ्यों की स्थापना ठीक एवम् स्पष्ट हो सकेगी।

समस्या का सीमांकन विषय का चुनाव करते समय यह भी अनिवार्य है, कि इस विषय को किस रूप में प्रस्तुत करनी है, अर्थात् पुस्तक के रूप में, शोध प्रबन्ध के रूप में, शोध पत्र के रूप में या विषय पत्र के रूप में। ऐसा करने से समस्या या चुना हुआ विषय सीमित हो जाता है। ऐसा करना आवश्यक है।

समय सारिका -प्रतिपाद्य विषय के प्रतिपादन के लिए समय-सारिका का होना होना आवश्यक है। अत; निश्चित की गई समय सारिका या समय सारणी के मनुसार कार्य का

परिचालन आवश्यक है। समय-सारणी में केवल प्रतिपादन ही सम्मिलित नहीं अपितु शैली भी सम्मिलित है। इसलिए समय-सारिका एक महत्वपूर्ण कारक है। विषय के चयन और निश्चयन का महत्व उपर्युक्त (क) भाग में विवेचित किया जा चुका है। समय-सारणी का करक उसी सापेक्ष हैं। अतः बेहतर यही कि निश्चित समय का कम-से-कम 50 प्रतिशत इसमें लगाया जाए।

स्त्रोत सामग्री— स्त्रोत सामग्री का शोध-प्रबन्ध लिखते समय महत्वपूर्ण स्थान स्वीकार किया गया है। विद्वानों एवं शोध-कर्ताओं के व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर ऐसा माना गया है कि स्त्रोत-सामग्री का परायण होना आवश्यक है। भिन्न-भिन्न स्त्रोतों से उपलब्ध विषय से सम्बन्धित सामग्री का एकीकरण अनिवार्य है। स्त्रोतों के विषय से सम्बन्धित सामग्री को एकत्रित करते समय विषय का शीर्षक ध्यान में अवश्य रखना चाहिए, ताकि अनुसंधान कहीं इधर-उधर न भटक जाए। प्रथम प्रारूप एवं अन्तिम प्रारूप में समय का विभाजन क्रमशः २० व ३० प्रतिशत के अनुसार रहें। अन्तिम प्रारूप में पुनः निरीक्षण, संदर्भ प्रयोग, पाद-टिप्पणी, वास्तविक लेखन, टंकन (टाईप) और शुद्धिकरण के कार्य भी सम्मिलत हैं।

कार्यात्मक पुस्तक सूची—विभिन्न स्त्रोतों एवं सूचनाओं को संदर्भित करने के अलग-अलग तरीके हैं। कार्य में लाई जाने वाली पुस्तकों की सूचि तैयार कर लेनी आवश्यक है। सूची तैयार कर लेने के पश्चात इन पुस्तकों में से विषय सम्बन्धित तथ्यों को 3"X5" लाईनदार कागजों पर एकत्रित करना चाहिए।

सामग्री की टिप्पणियां या सार एकीकरण करने की विधि कार्यात्मक पुस्तक की सूची में पुस्तकों से टिप्पणियां एवं सार एकत्रित करने अनिवार्य है। जिन्हें हम 3"X5" लाईनदार कागजों पर एकत्रित कर सकते हैं कार्ड पर सूचना दर्ज कैसे की जाए? इसका नमूना हम अध्याय के अन्त मे देंगे।

प्रथम—प्रारूप की रूप रेखा—उपर्युक्त तथ्यों को एकत्रित करने के पश्चात् हम शोध-प्रबन्ध के प्रथम प्रारूप की रूप रेखा बना सकते हैं। यह तभी होगा, जब हम ऊपर दिए तथ्यों का पूर्ण रूप से संकलन कर लेंगे।

प्रकरण

प्रसंग चयन (Selection of Topic) : प्रकरण के लिए उपयुक्त प्रसंग चायन, कई दृष्टियों से कठिनतम, कार्य है। अनुसंधाता को विशिष्ट विषय का सम्पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। अतः प्रकरणारम्भ पूर्व, आनर साहित स्नातक पर, विद्यार्थी को प्रकरण सम्बन्धी अधिक से अधिक जान लेना चाहिए। उत्तर स्नातक अथवा डाक्टरेट स्तर पर, न केवल इस पूर्व पाठ्यक्रम को सफलता पूर्वक पूरा करना आवश्यक है बल्कि कोई आनर प्रकरण या प्रारम्भिक परीक्षा में भी सफल होना आवश्यक है।

विषय क्षेत्र विषयक जितनी अधिक जानकारी होगी, उतनी ही अधिक त्रुटियां पकड़ने की व खोजबीन करने योग्य समस्याओं का जान लेने सामर्थ्य होंगी। उत्तर स्नातक विद्यार्थी को अपनी समस्यायें पकड़ने की क्षमता को बढ़ाना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक प्रकरण की समस्या विशेष के समाधान पर प्रकाश डालना ही चाहिए। असलियत ये हैं कि, प्रकरण जांचते समय प्रथम प्रश्न परीक्षक के सामने ये होता है। क्या यह इस क्षेत्र में ज्ञान वृद्धि है ? "अन्य शब्दों में यह प्रश्न इस प्रकार है :

"क्या खोजबीन की कोई समस्या थी और क्या इस प्रकरण ने उस समस्या का हल करने का

खोजबीन के लिए समस्या स्त्रोत : खोजबीन विषयक समस्याओं के अनेक उत्तम स्त्रोतों में से एक हैं, वह कटाघाट जहां से शोध कार्य किया गया। इस कटेघाट समीपतम षहुंचने के लिए किसी शोध संस्था के कर्मचारी वर्ग के साथ सीधा सम्पर्क अच्छा माध्यम रहता है। सक्रिय शोध कार्य में सामान्यत: शोधकार्य सहयोगी प्राध्यापक या प्रोफेसर जो कार्य में जुट हुए हो, के पास, शोध समस्याओं का संचय गार्जन की तरह से होता है। जितनी समस्यायों का समाधान मिलता है, उतनी ही नई समस्यायें समाधान के लिए सिर उठा लेती हैं। शोधकर्त्ताओं से सम्पर्क का निष्कर्ष निकला है, उनके लेखों के साथ, व्यापक साहित्य रूप में लिखित रिसालों में उद्भूत ताजा लेख, आपके क्षेत्र से सम्बन्धित, समकालीन साहित्य के अध्ययन से आपको ऐसी अमस्याओं का पता चल जाएगा जिनके समाधान पर कार्य हो रहा है और इन्हीं से शोधार्थी को समाधान योग्य समस्यायें भी सूझने लगेगी।

शोधार्थी अपने रूचि क्षेत्र में, आचार्य उपाधि विषयक अध्ययन का जानकार भी होना चाहिए प्रमुख विश्वविद्यालयों को समर्पित, आचार्य उपाधि प्रकरणों के सरांश जो मासिक पत्रों में छपते रहतें हैं, सारयुक्त अच्छे संक्षेपो प्रस्तुत करते हैं। सामान्यत: एंसे संक्षेपों के अन्त में भावी शोध कार्य विषयक सुझाव होते हैं।

प्रसंग चयन की कसौटी : एक बार अपनी रूचि क्षेत्र को साधने के और खोजबीन योग्य संभव समस्याओं का निदान करने के बाद, अनेक प्रश्न उभरते हैं जो आपको प्रसंग के विषय में पूछने चाहिए।

१. **क्या देख रेख पर्याप्त है ?** किसी संस्था के अध्यापक वर्ग से ऐसा प्रश्न पूछना कटपटा मालूम सकना है। परन्तु प्रश्न का अपना ही महत्व के। विशेषज्ञता की बढ़ोत्तरी काल में, संभव है कि आपके विभागीय सदस्यों में से किसी को आपके प्रसंग के रूचि न हो, या कोई उसका विशेषाश्रय न हो। स्नातकोत्तर विद्यार्थी में ऐसी संस्था में प्रवेश पाने का स्थान अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है, जिनकी रूचि विशिष्ट विषय में बहुत विकसित है।

२. **क्या प्रसंग वास्तव में आपके लिए रूचिकार है ?** शोधार्थी अपने अभियान में कम से कम एक वर्ष लगेगा और इसे सफलता पूर्वक निभाना रूचि केन्द्रित करने पर ही आधारित है। यदि रूचि खो बैठे तो आपका चयन बहुत ही मद्दा किस्म का है'

३. **क्या प्रसंग को निश्चित अवधि में निपटाया जा सकेगा ?** अनेक अध्ययनों के लिए, विशिष्ठ एवं खर्चीले साधनों या उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे उपकरण, आवश्यकता पड़ने पर प्राप्त कर लेने का, जब तक आपकों उचित आश्वासन न मिले, तब तक किसी अन्य प्रसंग पर विचार करना बुद्धिमता होगी।

४. **क्या विषय उपलब्ध है ?** प्रयोगात्मक जांच के लिए शोधकार्य में तैयार (उपलब्ध) विषय के सहयोग की आवश्यकता रहती है। विषय उपलब्धि की समस्या की विशेषतायें सामाजिक विज्ञानों में प्रारम्भ में ही सावधानी से समाधान न कर पाने के कारण बहुत से प्रकरण प्रस्तुत करने में बिलम्ब हो जाता है या उनका केन्द्र बिन्दु बदल जाता है।

७. **क्या पुस्तकालय सुविधायें पर्याप्त है ?** साहित्यिक एवं अलोचनात्मक शोध कार्यों में, पुस्तकालय सुविधाओं का होना बहुत आवश्यक है। कोई भी विशेष प्रसंग केवल इसलिए अनुचित हो सकता है कि तद्‌विषयक सामग्री पुस्तकालय में उपलब्ध नहीं है। उदाहरणतया, बहुत सी स्त्रोत सामग्रीं विषयक् एक आम बात है कि ऐसी सामग्री कुछ वर्षो तक उपलब्ध नहीं कराई जा सकती या किसी व्यक्ति के जीवनकाल में नहीं दी जा सकती। अन्य सामग्री न तो पुस्तकालय में ही और न ही अधिक मूल्यवान होने कारण अन्तर पुस्तकालय नियमाधीन मांगी जा सकें।

६. **क्या (समस्या) अध्ययन सुगम है ?** उपकरण उपलब्ध पुस्तकालय सुविधा एवं समय विषयक प्रश्न सुलझा लिए गए गए हैं। फिर भी, किसी एक और विचारणी प्रश्न है कि क्या किसी विशेष समस्या विषयक, शोध कार्य को जांचने की तकनीक विकसित कर ली गई है या प्रयप्ति रूप से सुधार ली गई ? इस प्रश्न का अर्थ है कि विद्यार्थी का अध्ययन प्रारम्भ से पूर्व निश्चित कर लेना चाहिए कि वह कौन सी तकनीक अपनाने की सोच रहा है।

७. **क्या समस्या सार्थक (अर्थपूर्ण) है ?** के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर देना बहुत ही कठिन है। आम अर्थों में 'बेकार तथ्य' जैसे कोई वस्तु नहीं है। सारी बड़ी योजना में, सभी तथ्य कहीं न कहीं जुड़ ही जायेंगे। अत: कड़ी की एक शिथल कड़ी उसकी मजबूती पर प्रभाव ही न होगी। किसी विद्वान या वैज्ञानिक लेखक के हाथ पड़ कर महत्वहीन तत्व या तथ्य भी महत्वपूर्ण बन सकता है। (जैसे निम्न टिप्पणियां)

आप स्वयं ही निर्णय करें कि श्रम, एवं मूल्य समस्या विशेष को सुलझाने के लिए उचित हैं या नहीं।

साहित्य समीक्षा : साहित्य समीक्षा का काम, जब तक प्रकरण पूरा हो तब तक चलता ही रहता है। यह उपयुक्त प्रसंग चयन से आरम्भ होता है। चूंकि प्रकरण का लक्ष्य ज्ञान वृद्धि होता है, इसलिए सावधानी से जांच लेना चाहिए कि प्रभावित अध्ययन पहले ही किया हुआ है या नहीं। यद्यपि सर्वथा नवीन, मौलिक समस्यायें कम होती है तो भी पूर्वाध्ययन को ज्यों का त्यों दोहराना नहीं चाहिए। यदि प्रयुक्त तकनीक दोषपूर्ण हो, गवेषणात्मक खोजबीन संदिग्ध हो, या नवीन स्त्रोतों की खोज हो चुकी है। जो समस्या पर जब प्रकाश डालता हो तो और बात है। सर्वोत्तम कसौटि यह है कि समस्या को हल की आवश्यकता है या नहीं।

प्रसंग चयन का फैसला कर लेने पर, प्रसंग सम्बन्धी उपयुक्त सामग्री की समीक्षा बहुत आवश्यक है। यह साहित्य समीक्षा प्रकरण के निर्णायात्मक लेख में, शीर्षांश अथवा शीर्षाध्याय के रूप में सम्मिलित होती है। लेखाधीन शोधकार्य समस्या का, पूर्वाध्ययन शोध कार्य समस्या के साथ सम्बन्ध स्थिर करना अनिवार्य है। कुछ विषय क्षेत्र में, समस्या का सिद्धान्तीय (सैद्धान्तिक) ढांचे में स्थापित करने का भी महत्व है और ऐसी स्थिति में मूल सिद्धान्त की समीक्षा भी आवश्यक हो जाती है। किसी क्षेत्र का काम कार्य से विशिष्ट कार्य तक सर्वेक्षण करना लाभदायक रहता है। यह फिर भी आदिस्त्रोत में स्त्रोत का समावेश करना चाहिए।

आदि स्त्रोत : आदि स्त्रोत जानकारी में सम्मिलित है, अनुभवों एवं खोजबीन के प्राथमिक विवरण (जैसे व्यवसायिम रिसालों में लेख एकांकी प्रबन्ध लेख, स्नातकीय प्रकरण, साक्षात्कार व प्रश्नावलियों) मौलिक कृतियां, (पत्र डायरियां, आंखों देखा विवरण, कविताओं उपन्यास जीवन:गाथायें, विज्ञाप्तियां संसदीय विश्लेषण, प्रमाण सरकारी माध्यमों एवं विभागों की विज्ञप्तियां, वार्षिक विज्ञप्तियां सभा कार्य विवरण।

स्कैन्डरी (गौण स्त्रोतों) : जानकारी के नगर दो स्त्रोत हैं, आदिस्त्रोत मूलक, संक्षिप्त जानकारी। इनमें अनुवाद, संक्षेपस्तर, समीक्षा शोधकार्य उदाहरण विश्वकोष लेख) सारांश, पथ प्रदर्शक पुस्तकें, अन्य स्थिति मूलक जानकारी युक्त मुद्रण अथवा टिप्पणियां, सम्मिलित हैं।

परिपक्वलेख स्त्रोत : परिपक्वलेख स्त्रोत जानकारी सामान्यत: पाठ्यक्रम पुस्तकें होती क्योंकि ये साधारणतया स्त्रोत नम्बर दो के संकलन हैं। सामान्यत: स्त्रोत जानकारी की विश्वस्तता की व्यवहारिकता है इसकी बहुत से विद्वानों से प्राप्त पुष्टि। वविस्तार संक्षेप का आद्याहोपान्त अवलोकन प्रस्तुत करने पर ही, पवनलेखन जानकारी स्त्रोत लाभदायक हो सकते हैं। वे प्राय: हवालों के रूप में भी स्वीकार्य होते हैं, क्योंकि कुछ पाठ्यक्रम पुस्तक अधिकृत मान ली जाती है। कुछ ऐसे प्रकार के शोधकार्य, जिनकी मौलिक विषय सामग्री नष्ट हो जाए या प्राप्त न हो, के लिए, नम्बर दो सहायक सामग्री पर ही अधिक विश्वास रखना होता है। आदि स्त्रोत जानकारी का कोई विकल्प नहीं है जिनको देखा जा सके और उपलब्ध हो उत्तरस्नातक स्तर के अधिकत्तर विषय में इसकी माँग रहती हैं।

ऊपर अध्याय में उपयोगी ग्रन्थ सूची विषयक दिए गए सुझाव, उत्तर स्नातक प्रकरणों एवं पूर्वस्नातक अवधि निबन्धों पर भी, समान रूप से लागू होते हैं। हवालों के लिए कार्डों का प्रयोग अथवा टिप्पणियां टापन के लिए अपनी दक्षता के कारण सर्वस्वीकृत है।

अध्ययन योजना : मौलिक रूप में अध्ययन योजना चयन में समस्याओं की खोजबीन करने के लिए समुचित पद्धति या तकनीक का चुनाव करना होता है। प्रकरण लेखन में यह बहुत ही कठिन काम है। क्योंकि गलत निर्णय के कारण सारा अध्ययन ही आलोचना का विषय हो जाता है। यही नहीं अनुपयुक्त रूप, चुनी गई योजना के आधार पर. सारी कृति को ही बे सिर पैर की व अवैज्ञानिक बताया जा सकता है। यह स्थित आलोचना से कहीं अधिक बुरी व दुःखद है।

शोधकार्य को समान्य नियमाधीन करना दुष्कर हैं। क्योंकि शोधकार्य अनेक सविस्तर पद्धतिव्रत है। मूल रूप में शोधकार्य अध्ययन की दो श्रेणियां हैं। परीक्षण और विश्लेषण वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन मुख्यत: परीक्षण श्रेणी के अन्तर्गत किया जाता है, जबकि कला सम्बन्धी विश्लेषण करके, किया जाता है।

शोधकार्य योजना के कुछ ऐसे भी तत्व हैं जो समान रूप से परीक्षणात्मक भी है और विश्लेषणात्मक भी। यह और बात है कि दोनों श्रेणियों के अधीन किए गए अध्ययन में, तत्व की व्याख्या या आशय कुछ भिन्न-भिन्न हो। विस्तृत प्रकार के अध्ययन में बहुत से तत्त्व एक दूसरे पर उपयुक्त होकर ही लागू होते हैं।

१ **प्राक्कल्पना का बयान** : परीक्षणात्मक अध्ययन में, समस्या का विशेष शब्दावली पुनुल्लेखि होता है जिसे जांचना होता है। इसका सम्बन्ध पूर्वकृत शोधकार्य से स्पष्ट करके, स्पटीकरण करना चाहिए। विश्लेषणात्मक अध्ययन में 'प्राकल्पना' शब्द शायद ही कभी आता हो। इसके बजाए एक विशेषतर्क अथवा प्रकरण पकड़ लिया जाता है। तर्क की अधार शिला का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।

२. **पूर्व धारणा :** का ब्यान-प्रत्येक अध्ययन विषयक कुछ धारणायें बना लेना आवश्यक है बनाई गई धारणाओं का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। किसी बात को पहले से ही स्थिर कर नहीं लेना चाहिए।

3. **अध्ययन की परिधियां (सीमाएं)** अध्ययन अवधिकाल व विस्तृत लेखन की पावन्दी, प्रत्येक अध्ययन का सीमांकन थापती है। अत: प्रस्तावित खोजबीन की, सीमा परिभाषा स्पष्ट होनी चाहिए।

4. **शब्द परिभाषा :** सभी शब्दों की परिभाषा होनी चाहिए। किसी अध्ययन की खोज को सार्थक करना बहुत कुछ 'शब्द' मौलिक परिभाषा पर आधारित होता है। उदाहरणतया, सभी अपराधों के मामले में 'बच्चों की अपराधवृत्ति 23 प्रतिशत बताने, में बच्चों की अपराधवृति' की परिभाषा को सार्थक करना होगा।

5. **शोधकार्य योजना की उपयुक्तता** परीक्षणात्मक अध्ययन में, प्राक्कल्पना के लिए, प्राकड़ा पद्धित की जांच व विवरण को, उपयुक्तता के लिए, जांचना आवश्यक है। वे बताई गई प्राक्कलाना के स्वीकृति सूचक है या अस्वीकृति सूचक ? तुलना में विश्लेषणात्मक या साहित्यिक अध्ययन में, तथ्य संकलन विधि के स्पष्ट विवरण की आवश्यकता होती है।

6. **नमूना व जनसंख्या विवरण :** अधिकतर परीक्षण अध्ययन में ऐसे प्रतिनिधि नमूने या नमूने की आवश्यकता होती है जो जनसंख्या के आधार पर निर्मित हो, ध्यान देने योग्य प्रश्न हैं कि क्या जनसंख्या या नमूने का पर्याप्त विवरण दिया गया है और कि, क्या नमूना लेने की विधि उपयुक्त है ? विश्लेषणात्मक अध्ययन भी उन संख्या निर्मित नमूने का उपयोग करता है। उदाहरणतया किसी उपन्यास आधारित प्रकरण में या कवि विशेष की कृतियों में चयन करना आवश्यक है। सामान्यत: जो प्रश्न विचारधीन होता है, यह है कि यह चयन लेखक का प्रतिनिधि है या केवल संकलन कर्त्ता का पक्षपात ही प्रस्तुत करता है ? परीक्षणात्मक व विश्लेषणात्मक, दोनों प्रकार के अध्ययनों में पक्षपात, करण को वृत्ति से बचने के लिए सावधानी बरती गई है। (कम से कम दिखा जरूर देना चाहिए कि सावधानी बरती गई है।)

7. **अशुद्धि नियन्त्रण :** अशुद्धि नियन्त्रण मुख्यत: परोक्षणात्मक अध्ययन लागू होता है। परीक्षाकारक को सोचना होता है कि स्थिति विषय में कौन-कौन से भिन्न तत्व पनप रहे है ? सामान्यत: एक प्रयोगशाला में, अशुद्धि के भिन्न-भिन्न तत्वों और स्त्रोतों पर नियन्त्रण करना संभव होता है। क्षेत्रिय अध्ययन में कुछ शीर्ष विरोधभावों का ही नियन्त्रण सामान्यत: संभव है। अन्य प्रकार की भिन्नताओं को तो वे तुका बताकर जोड़ा जा सकता है दोनों हालतों में विरोधाभावों का एवम् उनके नियन्त्रण विवरण आवश्यक है।

8. **विश्वासनीयता एवम् प्रमाणिकता :** परीक्षात्मक अध्ययन में विश्वसनीयता एवं प्रमाणिकता की जांच उपकरण रूप में, स्थिर करना आवश्यक है यदि ये जानने के लिए कि ये जांच (परीक्षण) समी चीन मापदण्ड प्रस्तुत करते हैं, या वास्तव में जो उनके विषय में मान्यता है, उनको मापते हैं ? संकलित सामग्री का मूल्यांकन परीक्षणात्मक व विश्लेषणात्मक अध्ययनों में भी बड़े कठिन महत्व का है अत: आदि स्त्रोतों का अध्ययन बांछनीय है। नम्बर दो स्रोत आधारित जानकारी नहीं। अनुवादित सामग्री की जानकारी जितनी कम होगी, उतनी ही विकृतियां कम होगी। इस बात पर अधिक बल नहीं दिया जा सकता कि संकलन से पूर्व शोधकार्य

योजना के विस्तार का निर्णय कर लेना चाहिए (या लिखने को प्राथमिकता देनी चाहिए।) संकलन कार्य योजना के अनुकूल होता है। बहुधा पूर्व संकलित का शोध कार्य योजना में स्थान देना या शोध कार्य योजना ढूंढना, यदि असम्भव नहीं तो कठिन तो होता ही है। बहुत सी संस्थाओं, वास्तव में विद्यार्थी का अध्ययन करने की अनुमति देने से पूर्व, तद्विषयक लिखित आवेदन चाहती हैं जिसकी पुष्टि आवश्यक होती हैं।

अध्याय रूप रेखा—कच्चा लेख लिखने के लिये, अध्याय की रूप रेखा तैयार कर लेना, प्रथम लाभदायक काम है। अधिकतर प्रकरणों में अध्याय पर्याप्त रूप से, आकार स्तर के अनुसार होता है। एक विषय प्रवेश सूचक अध्याय होता है और सामान्यतः एक होता है पर्व शोधकार्य, समीक्षक अध्याय प्रकरण प्रबन्ध के अगले अध्याय अध्ययानुकूल बदलते रहते हैं। परीक्षणात्मक अध्ययन शोध कार्य में, अनेक बार. एक या एक से अधिक अध्याय लेखन विधियां तकनीकी संबधो (प्राकल्पना, नमूना, परीक्षण शोधकार्य योजना) और एक या अधिक अध्याय, निष्कर्ष संबधी होता है) विश्लेषणात्मक शोधकार्य अध्ययन में, अध्याय विभाजन, तिथिवार विकास के (उदाहरणतया आदि पत्थर युग, मध्य पाषाणकाल व आदिकाल, निर्माणकाल आदि) या तर्क युक्त विकास के कविता, नाटक, गल्प व व्यंग):, आधार पर होता है। निर्णायक अध्याय, प्रत्येक निष्कर्ष युवत अध्याय विषयक होता है। बड़े और छोटे उप-शीर्षक भी होते है। यह शीर्षक की अपेक्षा जो टिप्पणी युक्त होते है या ऊपरी दिये वर्णानुसार होते हैं, विचलित करने वाली होते हैं। नीचे विषय प्रवेश एवं निर्णायक अध्याय विषयक नमूने दिये जाते है।

अध्याय

प्रस्तावना/प्राक्कथन/विषय प्रवेश
समस्या
समस्या की व्याख्या
अध्ययन को महत्व
अध्ययन को क्रम युक्त करना
अध्ययन की सीमायें।
निष्कर्ष और अनुमोदन
समस्या और प्रक्रिया

निष्कर्ष

प्राध्यापिका,
पत्राचार पाठयक्रम,
हिमाचल प्रदेश, विश्वविद्यालय,
शिमला।

जुलाई 1985

विधि माता और हिमाचल प्रदेश

● अमृत कुमार शर्मा

जैसा कि हमारा प्रदेश, हिमाचल ! अपनी अनुपम संस्कृति के लिए न केवल भारत में ही विख्यात है परन्तु हिमाचल की सस्कृति का प्रभावशाली प्रचार विश्व पर भी इन्द्र धनुष के समान पड़ रहा है। आज विश्व के इतिहासकार, साहित्यकार व शोध कर्ता भारत भूमि पर पांव रख कर हिमाचल प्रदेश की लोक संस्कृति परम्परा, साहित्य की खोज में हिमाचल की ओर बढ़ते हैं और यहां आते ही हिमाचल की लुभावनी-मनभावनी छवि के साथ-२ यहां की संस्कृति की ओर भी झुक जाते हैं। वस्तुतः ही हर एक के मुख से यह शब्द अनायास ही निकल पड़ते हैं कि, "हिमाचल प्रदेश देव भूमि है' इस में तनिक भी सन्देह नहीं हैं, हमारा प्रदेश अपनी संस्कृति के लिए सदैव ही धनवान रहा। हिमाचल के जन-जीवन में मनुष्य के जन्म से मरण तक उसके अनेकों प्रकार के संस्कारों के लिए "स्वर्ण पुस्तक" हर हिमाचली के मानस पर अंकित है व धीरे-२ प्रकाशय रुप में आम जन समुदाय के सामने आ रही है। देव संस्कृति विवाह, जन्म, इत्यादि कई अन्य उत्सवों को यदि हम एक सूत्र में बांध कर उस पर चिर-विचार करें तो यह आभास होता है कि हम से ऐसी कोई घटना जो मनुष्य जीवन से जुड़ी हो नहीं रह जाती जो हमें पग-पग पर उपदेशक सिद्ध न होती है।

अन्य त्यौहारों की भान्ति, हिमाचल में एक त्यौहार आता है जिसे, "बी माओं" का व्रत कहते है। इस व्रत का तात्पर्य यह है कि इस में विधि माता की पूजा की जाती है, विधिमाता अर्थात् विधाता, यह पूजा केवल ब्राह्मण समुदाय में ही होती है और इस पूजा को केवल गृहणियां ही निभाती है। वही इस विशेष पर्व पर व्रत रखती है। यह त्यौहार ज्येष्ठ मास के प्रथम रविवार से आरम्भ होता है और पूरे सोलह दिन तक चलता है, सताहरवें दिन विधि माता का प्रस्थान होता है। इस की पूजा विधि इस प्रकार है :—

ज्येष्ठ मास के प्रथम रविवार जिसे स्थानीय भाषा में "जैठो तवार" भी कह देते है को विधि माता के पूजा पटल को शुद्ध जल से धो कर उसे पठाव व कुमकुम के साथ रंगा जाता है। पटल

को रंग कर उस के सही स्थान पर ले जाया जाता है व उसकी पूजा आरम्भ की जाती है। स्त्री जो इस पूजा को करती है प्रातः स्नान कर के निराहार परम्परागत घागरा पहन कर, सर्वप्रथम अपने हाथों में कुमकुम व बत्तीस (३२) दाने अक्षत के लेकर उन्हें सर्वप्रथम बत्तीसबार हाथ जोड़ कर अपने सीने के सामने गिनती हैं व ३२ बार दोनों कन्धों पर हाथ जोड़कर गिनती है व ३२ बार ही अपने हाथों में रखे कुमकुम व अक्षत को गिन कर पीठ के पीछे ले जा कर हाथ जोड़ कर अन्त में बिधि माता के पटल पर समर्पित करती हैं। इस के बाद १६ (सोलह) फूलों का एक गुच्छा अपने हाथों में रख कर उपरोक्त वर्णित विधि द्वार पटल पर चढ़ाती है, व उसके बाद सोलह (१६) और फूलों के गुच्छे को इसी प्रकार पटल को समर्पित करती है। कुमकुम, अक्षत व फूलों के बाद १६ डालियां द्रुवा की इसी विधि द्वारा समर्पित की जाती हैं।

इस के उपरान्त बिधि माता के लिए भोग लगता है। भोग जौं का होता है। यहां पर यह विशेषता है कि, यह जौं, जो बिधि माता का भोग बनाने के प्रयोग में आता है इसे आश्विन महीने में भूखे पेट से बोया जाता है और बैशाख माह में भी भूखे पेट से काटा जाता है तथा ज्येष्ठ माह में भूखे पेट से पीस कर सात्तु बनाए जाते हैं। इनकी निडाई-गुड़ाई भी निराहार की जाती है। यदि जौं न प्राप्य हो तो उस के स्थान पर गुड़ व जंगली फल हिसर का प्रयोग भी किया जाता है।

लेख में जो चित्रण किया गया है वह विधि माता के पूजा पटल का है। इनका चित्र पटल से तो नही मिलता क्योंकि पटल से चित्र साफ नहीं आया पटल पर अंकित बिधि माता के विभिन्न रूपो का प्रथम ट्रेस किया गया व उस के बाद मैंने ट्रेस को एक कपड़े पर उतार कर इसे कसीदा करवाया। बिधि माता के पटल को कपड़े के ऊपर कसीदा करने में मुझे एक स्थानीय लड़की कुमारी कमलेश गौतम का सहयोग प्राप्त हुआ जिस के लिए मैं उनका आभारी हूँ, उन के इस प्रयास से ही मैं अपने इस आलेख को चित्र सहित प्रस्तुत करने में सफल रहा हूं।

भोग लग जाने के बाद, गृहणी पहले रविवार की कथा प्रातः ही पूजा में अपने सुनने वालों को सुनाती हैं, कथा आरम्भ होने से पहिले वह इस पहाड़ी मन्त्र का उचारण करती है :—
इस मन्त्र उचारण के बाद

मन्त्र

जैठो मीनो, तवार बार
वामणे घरे आई बी मां,
चूड़दे नाके पिंजरे कैशे आई
बामण दोवे नाह धोआ,
बीअ पाटणों, मैंऊव-ब्वाऊओं,

प्रात स्नान करा, हाथे पैरे महदसीरी गुन्दा

चन्द्र, सूरज बी-बचात,

नरक सीड़-स्वर्ग सीड़

धूप-दीप नैई वेदय

दण्ड प्रणाम, प्रश्न केरा

विधि माता के १६ व्रतों की प्रथम कहानी शुरु होती है :—सोल्लह कहानी जो क्रम सहित १६ दिन में उपरोक्त पूजा विधि के बाद मन्त्र उच्चारण करने के उपरान्त सुनाई जाती है उन कथाओ के नामों से सर्वप्रथम मैं आप को अवगत करवाता हूं।

१६ दिनों की कथाओं के नाम

१. पहले रविवार को :—जौ लवाई की कथा
२. ,, सोमवार को :—जूवे डाणई की कथा
३. ,, मंगलवार को : गोबरी थिपकी की कथा
४. ,, बुधवार को : फूले फुलेरुई की कथा
५. ,, वीरवार को दालजे मांगदीई की कथा
६. ,, शुक्रवार को गिणी गिनोलटीई की कथा
७. ,, शनिवार को छारा चाड़दीई की कथा
८. दुसरे रविवार को चौंऊ तवारीई की कथा
९. ,, सोमवार को बीआ फड़ीई की कथा
१०. ,, मंगलवार को दवारा पुत्रेई की कथा
११. ,, बुधवार को सातुवी सतीटीवीई की कथा
१२. ,, वीरवार को घड़े गाए लत्रदीई की कथा
१३. ,, शुक्रवार को फूलदी बेटीई की कथा
१४. ,, शनिवार को दुधे गोड़िएई की कथा
१५. तीसरे रविवार की घोढ़ेई गणांगणुई की कथा
१६. ,, सोमवार को गुगड़ू बाटड़एई की कथा और—
१७. ,, हीं सोमवार को आसादेव आसादेव की राणीई की कथा।

१६ वें दिन अर्थात् सोमवार को जिस दिन यह ज्येष्ठ माह का विधिवत् पूजन व्रत समाप्त होता है उस दिन दो कथाए सुनाई जाती है, जिन्हें मैंने १६वे १७वें नम्बर देकर दंशाया हैं।

विधिमाता की इन सभी कथाओं में ब्राह्मण परिवार का वर्णन आता है। मैं यहां पर सोल्लह-की सोल्लह कथाओं का देना तो कठिन है फिर भी मैं इन कथाओं का सारांश देने का प्रयास करूगा।

कथा-१

पहले दिन रविवार को जिस दिन से यह पवित्र, विधाता पूजन का त्यौहार आरम्भ होता है उस दिन सुनाई जाने वाली कथा का संक्षिप्त रुप यह है कि एक ब्राह्मण प्रातः उठ कर अपने कार्य को चला जाता है उसकी पत्नी घर पर बैठे सोचती है कि आज ज्येष्ठ माह का प्रथम रविवार है। विधि माता के पूजन का दिन है परन्तु खेद है कि मेरे पास भोग हेतु जौं तक नहीं है वह सोचती-सोचती रो बैठती है। इतने में वहां एक बूढ़ी आती है वह उस के रोने का कारण पूछ कर उसे कहती है कि तू उस पहाड़ी के पीछे चली जा वहां से जौ काट काट कर भोग हेतू लाना परन्तु वापसी में पीछे मुड़ कर नहीं देखना। वह गृहणी यह करती है और सीधी अपनी पूजा में बैठ जाती है पूजा कर पहली कथा सुनाकर जब वह बाहर आती है तो देखकर आश्चर्य में पड़ जाती है कि उसके बन्जर घर के इर्द-गिर्द जौ की फसल की हरियाली होती है यह चमत्कार उस बुढ़िया का है जो बूढ़ी के रूप में स्वयं विधि माता थी! इस प्रकार पहली कथा में माता की कृपा से पूजन से घर का भण्डार जौ से भर जाता है और कथा को नाम दिया गया (जौ लवाई की दूसरी कथा)

कथा-२

इसी प्रकार दूसरी कथा में द्रुबा की कमी पूरी होती है और कथा को नाम दिया गया (जूत्रे डाणिई) की कथा दूसरे दिन की कथा प्रथम दिन की कथा की तरह ही है।

कथा-३

तीसरी कथा का रूप कुछ इस प्रकार है व्रत का तीसरा दिन हैं। ब्राह्मण अपने बैलों को लेकर खेतों में गया है। दोपहर का समय है। ब्राह्मणी सोचती है कि मैं अपने पति को भोजन किस के पास भेजूं। वह यह विचार कर गौशाला में आती है रसोई की सफाई हेतू गोबर निकालकर उसे घर की दहलीज पर रखती है और स्वयं कहीं चली जाती है उसके विचारों के साथ भोजन को खेत तक ले जाने की समस्या उलझी रहती है कि तभी गोबर का रूप बदल कर बालक बन जाता है। वह मां मां कहता हुआ ब्राह्मण औरत के पास जाकर कहता है कि हे मां मैं पिता जी को खाना ले जाता हूं। गृहणी हैरान हो जाती है कि गोबर का बच्चा बन गया। वह उसके पास रोटी देती है। इस प्रकार व्रत की तीसरी कथा सुनाई जाती है जिसे नाम दिया गया (गोबरी-थीपकी) की कथा! विधि माता की पूजा करने वाली औरतों का यह मत है कि गोबर से बना यह बच्चा गणपति, 'गणेश' है जो बाद मे पार्वती माता ने भी बनाया और गणेश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उनका कहना यह भी है कि पूजा के लिए गोबर का गणपति जो द्वार पर रखा जाता है वह यही है। वास्तविकता कुछ भी हो परन्तु यह जन विश्वास है।

कथा-४

इसी प्रकार चौथी कथा में विधि माता की पूजा हेतू फूल स्वतः ही आ जाते हैं जिस कथा को नाम दिया गया (फूली फलेरूई) की कथा।

कथा-५

व्रत के पांचवें दिन की कथा का रस थोड़ा बदल जाता है। इस कथा में ब्राह्मण बहुत धनवान होता है। कि पुत्र-पुत्रवधु उसे कहते हैं कि हमें थोड़ी निर्धनता चाहिए। उनके कहने पर वह सभी वारों के पास जैसे कि सोमवार मंगलवार के पास जाता है। अन्त में वृहस्पतिवार के पास जाकर उस से दरिद्रता मांगता है। बृहस्पतिवार कहता है कि मेरे दिन घर की सफाई कर बाल काट, नाखून काट ब्राह्मण यही करता है। धीरे-धीरे उसका घर गरीबी की गर्त में जा गिरता है और उसे रोटी तक नसीब नहीं होती। अब उसे के घर में कहा जाता है कि अब हमें अमीरी ला दो। वह पहले की भांति सभी वारों के पास जाता है, अन्त में वह रविवार के पास जाता है और रविवार उससे कहता है कि तू घर में सफाई कार्य कर। वह वैसा ही करता हैं और उसके घर में खुशहाली फिर अपनी बहार लाती है। इस कथा में यह कहने का तात्पर्य है कि वृहस्पतिवार को बाल, नाखून व लिपाई-चूना इत्यादि का काम शुरू नहीं करना चाहिए यह कार्य रविवार को उत्तम होता है उसके नाम दिया गया (दालजे भांगदीई) दालजे का अर्थ दरिद्रता की कथा।

कथा-६

छठे दिन की कथा इस प्रकार है कि एक मां और उसकी सौतेली बेटी होती है। सौतेली बेटी विधि माता की पुजारिन होती है मां बेटी से काम करवाती है व उसे फटकारती रहती है। एक दिन धान कूटने को दिया जाता है। धान एक ताठ अर्थात 2 किलो होता है। वह उस धान को कूटकर लाती है। धान का बुरादा निकल जाने से वह बजन में घट जाता है। मां बेटी को कहती है कि तूने उसे दूसरों को बांट दिया। वह उसे मार देती है बाद में जब कुछ लोग धान का बुरादा इकट्ठा कर उसका बजन पूरा कर देते हैं तो वह मरी पड़ी बेटी को कहती है कि बेटी धान पूरा हो गया। यहां पर यह जनश्रुति है कि वह मां और बेटी आजकल पक्षी रूप धारण किए हैं और वैशाख-ज्येष्ठ मास में एक ओर से बेटी कहती है—घु-गू-ती कु-टु-तो अर्थात मैं धान कूटा करती थी। दूसरी ओर से मां कहती है -पू-र-र-र- पू-र-र-र- अर्थात् धान पूरा है, जब यह पक्षी बोलते हैं तो मैंने औरतों को कहते सुना है कि यह कहानी मां और उसकी सौतेली बेटी की है जिस में मां पश्चाताप कर रही है। इस कथा को नाम दिया गया (गिरणी गिनोलटीई) की कथा।

कथा-७

सातवीं कथा में भी दरिद्रता की बात ही है। केवल फर्क इतना है कि घर की स्वामिनी सुबह-सुबह छाननी में भस्म राख छानती है और उसका घर दरिद्रता के बहुपाश में बुरी तरह जकड़ जाता है। कथा का नाम दिया गया (छारा चाड़दीई) की कथा।

कथा-८

उसके बाद ज्येष्ठ मास के दूसरे रविवार को यह कथा है कि एक औरत के कोई भाई नहीं होता वह हर त्यौहार पर भाई की याद से तड़प उठती है। तब वहां महीने के चार रविवार प्रकट होते हैं और उसे अपनी धर्म बहिन बना कर बचन देते हैं कि हम तेरे हर सुख-दुख में शरीक होंगे। यहा पर रविवार को औरतों का धर्म भाई का रूप दिया गया है और मैंने यह कुमारसैन

सोसमी

जनपद पर रह रही औरतों को कहते सुना है कि रविवार माई की पूजा का दिन होता है। महिने में आमतौर पर चार रविवार ही आते हैं। अतः कथा का नाम पड़ा (चौऊ तवारीई) की कथा।

कथा ९

व्रत की नौवीं विधि माता के पटल की है जिस में स्वयं माता अपने व्रत के पटल को लेकर एक घर में प्रवेश करती है, और एक-एक से अपने पटल की पूजा करने को कहती है परन्तु उसे कोई सम्मान नहीं देता। अन्त में जब वह निराश होकर वापिस लौटती है तो उसे उसी ब्राह्मण घर की छोटी कन्या मिलती है, और पूरा वृतान्त सुन लेने के बाद वह कन्या उस पटल को माता से लेती हैं व पूजा करती है जब उस कन्या का विवाह होता हैं तो पटल साथ ले जाती है पटल के बाबूल के घर से ससुराल जाते ही बाबूल का घर गरीबी की गर्त है डूब जाता है, और ससुराल फल-फूल जाता है। कंगाल बाबूल अपनी बेटी के घर जाकर अपनी गलतियों की क्षमा मांग कर एक नया पूजा पटल तैयार कर विधि अनुसार पूजा करता है, और अपने पेट की रोटी माता की दया से प्राप्त करता है।

कथा १०

दसवें दिन की कथा में एक औरत का पुत्र रत्न के लिए मोह का वृतान्त है, औरत के पुत्र नहीं है। वह विधि माता का व्रत करती है व कहती है, कि मैं भी दूसरी औरतों की भान्ति पुत्र संस्कार करना चाहती हूं, अतः विधि माता उसे वर पुत्र देती है जब विवाह तक के सभी संस्कार कर मां अपने पुत्र से ऊरन हो जाती है तो विधि माता अपने पुत्र को वापिस लेने आती है। घर में आई बहू भी विधि माता की भक्तिनी होती है, वह माता के चरण छू कर उस से सौभाग्यवती का आशीर्वाद प्राप्त करती है, ज्यों ही माता सौभाग्यवती कहती है वह कह उठती है, हे मां! में कैसे सौभाग्यवती हुई, मेरा सुहाग तो आप छीन रहे है बहू के इन वचनों पर विधि माता शरमिन्दा होती है व पुत्र को चिरंजीवी बना कर दोनों का जीवन सुखद बनाती है इस कथा को नाम दिया गया है, (दवारा पुत्र) की कथा आज की, बूढ़ी औरते सुहागिनों को कहती है कि अपने से बड़ों के चरण स्पर्श कर उन से तरह २ के आशीर्वाद प्राप्त करने चाहिए।

कथा—११

ग्याहरवे दिन की कथा इस प्रकार है गांव की लड़कियां बनों को अपने पशु चुराने ले जाती है व वहां पर विधि माता का पूजन कर जौ के सत्तु बना कर भोग खाती हैं। उन में से एक लड़की जो ब्राह्मण होती है, भोग नही खाती व सूख-सूख कर कमजोर हो जाती है जब घर-घर पता लगता है तो उस के मां-बाप बन आते है। व उस द्वारा छुपाए गए भोज को साफ कर उसे खिलाते है व पुनः स्वस्थ हो जाती है अस्तु इस कथा में यह कहना चाहते है कि भगवान का भोग कभी भी नही ठुकराना चाहिए। कथा को नाम दिया (सातुंबी सतीटीबीई) की कथा :—

कथा १२

बाहरवे दिन गुरुवार आता है उस दिन की कथा भी नौवे दिन की कथा के समान है। फक इतना है कि नौवे दिन विधि माता स्वयं अपना पटल लेकर आती है। इस में छोटी कन्या घड़े पर ही पटल रग से बना कर पूजती है घर खुशहाल होता है उस के ससुराल जाते ही घर कंगाल बन जाता है। कथा को यहां नाम दिया गया है (घड़े गांए लीवदीई) की कथा—

कथा १३

१३वें दिन शुक्रवार आता है इस दिन की कथा रोचक है, होता यूं हैं कि एक ब्राह्मण जो राजपुरोहित होता है। उसकी दो कन्याए होती है दोनों कन्यायों में यह गुण हैं कि एक फूलती है तो दुसरे फूल चुन कर उन को माला में पिरो कर अपने पिता को देती है। वह उस माला को राजा को देती है. राजा प्रसन्न हो कर उन कन्याओं से विवाह रचा कर उन्हें राजमहल ले आता है वहा सौकंने जल-मर जाती है। एक दिन उन को कहती है कि तुम दोनों ही फूल जाओं, वह वैसा ही ही करती है। राजा की अन्य रानियां उन्हें तोड़-मरोड़ कर एक नाले में फैंक आती है वह वहां पर भी फूल जाती है उन में से एक बैर की डाली व दूसरी चन्दन वृक्ष बन जाती है। एक दिन बैर पक्के है, तो राहगीर आकर मीठे बैर खाते है तो बैर की डाली चन्दन वृक्ष से पूछती है

गीत :

बैरी : माईयां-चान्दरणा मेरे बैर खाए

चन्दन : खाड़े-दे-खाड़े दे मेरी बैहरण जौ म्हारे माली आ-भाई आ --

अन्त मैं उधर से राजा की रानियां भी गुजरती है उस का मन भी बैर की डाली देख कर उन्हें खाने को ललायत होता है। ज्यों ही वह बैर की डाली के पास आती है तो बैरो गा उठनी है।

गीत :—

बैरो : माईयां चान्दरणा, मेरे बैर खाए

चन्दन : खाड़े ने देई-खांण ने देई, मेरी बेहरण, जी म्हारी शत्रु आई—

अत: चन्दन भाई की बात का अनुसरण कर बैरी बहन उन राजा की सातों रानियों को अपने कांटों से चीर कर खत्म कर देती है। इस कथा को नाम दिया गया (फूलदी बेटीई) की कथा। इस कथा का आशय है कि अच्छाई को, गुणों को यदि गन्द-कीचड़ व बुरी जगह भी फैंक दो तो वह वहां भी अपनो मधुरता का अमृतरस फैंक कर सारे वातावरण को इत्र के समान सुगन्धित कर देता है। अत: हमें अपने जीवन में अच्छाई का मार्ग अपना कर समाज की बुराईयों को दूर हटा देना चाहिए।

कथा—१४

१४वे दिन शनिवार वाले रोज की कथा की नौवी कथा से मिलती है अन्तर यह है कि इस में विधि माता को घर की बहू अपनी सास के पास भेजती हुई कहती है कि तू हमारी सास के पास जा

"जो दूध गुटा भात फड़ीका" अर्थात् खीर में से दूध पीती है। चावल फैंक देती है, सास भी विधि मां का निरादर करती है। वह निराशा से बाहिर आती हैं।वहां उसे कन्या मिलती है। बाद की कहानी नौवी कहानी की तरह चलती है। कथा को नाम दिया गया (दूदे गोड़िएई) की कथा -

कथा — १५

व्रत के तीसरे रविवार को भी काफी रोचक कथा का प्रवचन होता है जो दूसरे शुक्रवार की कथा से मिलता है। अन्तर यह है कि वहां दो बेटियां होती है, यहाँ एक ही राजमहल में आगमन राजा का साईस करवाता है, व सौकने ब्राह्मण कन्या से सीधे काम करवा कर उसे राजा की नजरों से गिरा देती है। राजा जब उसे ठुकराता है, तो सारा राज्य भूखमरी की लपेट में ग्रस्त हो जाता है। अन्त में रानियो को दण्ड देकर ब्राह्मण कन्या को राज महल लाया जाता है।

ब्राह्मण कन्या को राज महल की प्रमुख रानी बनाया जाता है। कथा को नाम दिया गया (घोड़ेई गणांगंगणुई) अर्थात् घोड़े देखने वाले द्वारा लाई गई राजा को रानी की कथा—यह कथा व्रत के १५वे दिन सुनाई जाती है।

कथा – १६

विधि माता के व्रत क्रम में सुनाई जाने वाली कथाओं की १६वीं कथा इस प्रकार है जो अन्तिम दिन सुनाई जाती है। इसी प्रकार अन्तिम दिन में १७वीं कथा का प्रवचन भी होता है। १६वीं कथा को सुनाते समय आटे का मिठा भोग घी के मध्य बनाते-बनाते लगाते है। भोग को गुगड़ वाटुड़ए कहते है। कथा में भोग को खाने से सुख का वर्णन किया गया है, व भोग बनाकर 17वीं कथा इस प्रकार है।

कथा-१७

एक ब्राह्मण कुल होता है। चार स्त्रियां हैं, सबसे छोटा जोड़ा सुन्दर व विधिमाता का भक्त होता है। इससे तीन भाई और उनकी पत्नियां इस समधुर सुन्दर जोड़े से जलते रहते और उन्हें यातनाएें देते रहते हैं। एक दिन इस जोड़े को खत्म करने की योजना बनाई जाती है। ब्राह्मण बेटा बच जाता है।व साधू बनकर दूसरी रियास्त को चल पड़ता है। उसकी विधवा पत्नी घर में यत्नायें सह-सह कर दु:खी होती है। पर लक्ष्मी रूप को पवित्र बनाने के लिए वह दुखी घर में ही रहती है। ब्राह्मण साधु बन जिधर-जिधर चलता है। वह "आसादेव आशा देवई रानी" लिखता चला जाता है। जब वह एक रियास्त में पहुँचता तो वहां पर प्रजा एक राक्षस के अतंक से दु:खी होती है। राजा ने यह घोषणा की होती है। कि जो राक्षस को मारेगा वह राज्य का अधिकारी होगा। विधिमाता के प्रताप से आसादेव राक्षस को मार कर वहां का राजा बन जात है। एक दिन वह तीन भाई अपनी पत्नि सहित व उस आसा देव की पत्नी को लेकर कगांल बनकर उस रियास्त में आते हैं। व काम खोजते-खोजते राजा तक पहुँचते हैं।

आसादेव को राज सिंहासन पर बैठे देख वह शर्मिन्दा होते हैं, परन्तु आसादेव इन्हें अपनाता है वह अपने रियासती कार्य में भागीदार बनाता है। अपनी दु:खी पत्नी को रानी बनाकर राजमहल ले जाता है। कहानी सुनाने का यहां पर मतलब है, कि विधिमाता अपने भक्तों का प्रदेश में भी ध्यान रखती है, व उसकी सफलता का मार्ग सुखद बनाकर उसे आनन्दित करती है। इस कथा को नाम दिया गया (आसा देवई राणी ई) की कथा।

इन सभी कथाओं को हर रोज बोलने से पहले पूर्व वर्णित मन्त्र कहते हैं व कथा की समाप्ति पर इस मन्त्र को कहते हैं।

मन्त्र :-

आटी-बाटी किन किनार ....
बौरे-बाड़िए बीसो न्यार - सो सनी कुटा
आईए मंगल गा - बामण बेद बर्णा
... ... घने तेरी ध्रुवा ला
कंवारी कलश भरा, गोऊए चापड़ खा
बी माएं कैंठ-बड़ेट - सुख - सन्तोष देई
जिद का बी मां बुली नी बीसरी नी
... ... कथा में जाड़दी
विदा का माए शाप न देई ....

जल धोवन

16 दिन के व्रत में विधिमाता के पटल को हर रविवार को धोया जाता है, व अन्तिम दिन सोमवार को हर घर से जहां-जहां माता की पूजा हेतु पूजा पटल होते हैं। प्रात: कथा सुन कर उस पटल को मंगल ध्वनी सहित गांव की बावड़ी पर ले जाया जाता है। ढोल-नगाड़ों के साथ विधिमाता को पानी तक ले जाते समय यह गीत गाया जाता है।

गीत :—

जोड़े जात्र मात्रे - साख्या लोड़ी
लागी तांईए ब्रीखमा क्वांरी।
पलै पूजो देवा बनाईका
पैंशा पाकड़ू माए तेरे —॥
आरती भण्डारों - सकली संसारों
चली मांईए ब्रीकमा क्वारी।॥
दुध पूत्रों मांए साख्या लोड़ी
चाली माईए ब्रीकमा क्वारी ॥।

इस गीत को गुनगुनाते-गुनगुनाते विधिमाता के पटल को पानी में धोया जाता है, और उसे 'पठाव' व कुमकुम से दोबारा रंगा जाता है। विधिमाता के पूजा के फूल बांटे जाते हैं।

स्त्रियां जब भी सामूहिक रूप से पानी की बावली पर विधिमाता के पूजा पटल को धोती स्नान करवाती है तो वह एक गीत गाती है, जो इस प्रकार है।

गीत : —

जल्ले वैशी बेटड़ी करदी स्नाना
कौसू मोरी बेटड़ी, कौसू मेरी नारा
हिम्मता रिकीईए, बेटड़ी, नारदा ऋषिई नारा
जल्ले वैशी बेटड़ी करदी स्नान ... ...
जनका रिकीईए बेटड़ी रामचन्द्रा री नारा

इसी प्रकार सुहागिन औरते अपने-अपने सुहाग की मंगल कामना करती है। इस गीत में हिम्मत शब्द सति पिता राजा हिमाचल का द्योतक है, और नारद का उचारण भगवान् शिव के लिए प्रयुक्त हुआ है।

विधिमाता के पूजा पटल को स्नान करवाने के बाद स्त्रियां उस पटल को अपने कन्धों से लगाकर वापिस घर लाती है। और गीत गाती है। जिस में अपने कुटुम्ब की मंगल कामना की होती है। गीत के बोल कुछ इस प्रकार है।

गीत: —

पैहला बधावड़ा हेता गेरी अन्दरी
कटियां देवा थारड़ो बारो — बाला जी
पैहनो दुर्गा गौरिए सर्वास्वाणगा
गले पहनी चौड़ी सिरे ओडी रात्रड़ी डोरी
दुजो बाधावड़ा हेता गेरी अन्दरी
रमेशवरा सिहा, थारड़ो बारो बाला जी
पैहनो राणी गोरिए सर्वास्वागा
गले पहनी चोड़ो सिरे आड़ी रात्रड़ी डोरी

अपने इष्ट देवता के मंगल के बाद रियासती समय में अपने राजा के चिरंजीवी व रानी के चिर सुहाग की कामना की जाती है। रमेश्वर सिंह कुमारसैन के राजा थे। इस मंगल के बाद सभी स्त्रियां अपने-अपने कुटुम्बों के सदस्यों के नाम लेकर उपरोक्त वर्णित गीत ही गाती है। पंक्तियां यही है अन्तर यह कि, नाम बदले जाते हैं।

इस प्रकार यह ज्येष्ठ मास के प्रथम रविवार से आरम्भ होने वाला त्यौहार पूरे सोलाह

दिन चलकर समाप्त होता है ।

विधि माता की सोलाह की सोलाह कथाएं प्ररेक व जीवन के लिए सार्थक है। इस में जीवन के हर पहलू पर विचार किया गया और कथाओं के माध्यम से समझाने की कोशिश की गई, कि जीवन कितना अमूल्य है। इसे व्यर्थ की बातों में नहीं खोना चाहिए। हर प्रकार से अपना चित्त प्रभु चिन्तन में लगाना चाहिए तभी भगवान् प्रसन्न होकर जीवन में अमृतरस घोलते हैं ।

विधि माता की इन प्रेरक कथाओं को मैं पुस्तकाकार रूप देने का प्रयास, इसके विभिन्न चित्रों सहित कर रहा हूं ।

पठाव : पीला रंग : यह रंग केड़ो नामक एक वृक्ष से, बरसात में फूल से निकलता है। वृक्ष पर बरसात में फूल लगते हैं इन्हें वैशाख में निकालकर सुखाया जाता है व फिर पीस कर जो पीला सा रंग बनता है उसे पठाव कहते हैं ।

2. सातु : जौ का पीसा हुआ आटा
3. पाटणो : पटल
4. जूब धू्व
5. दालजे दरिद्रता
6 छार राख
7 दवारा उद्धार
8 तवदीई लिखना
9. गुगड्ड बाटदूए आटे का भोग
10 फड़ीका उगलना
11 गणांगणू साईंस
12. चापड़ चोकर
13. कैंठ बड़ेट
14. जल्ले पानी
15. रिकीईए ऋषि
16. कौसू किसकी

अमृत कुमार शर्मा
श्री कोटेश्वर कृपा निव
गांव व डाकघर किंगल
जिला शिमला हि. प्र.-172024

कांगड़ी बोली में नकारात्मक प्रक्रिया

● मधुबाला

नकारात्मक प्रक्रिया का प्रयोग सकारात्मक प्रक्रिया के बिल्कुल विपरीत होता है। नकारात्मक प्रक्रिया के अंश आर्य भाषाओं में पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलते हैं। इन नकारात्मक अंशों के प्रयोग द्वारा शब्दों के अर्थों में परिवर्तन हो जाता है। कुछ अंश पूर्व प्रत्यय के रूप में मूल रूप से पूर्व प्रयोग होते हैं। और कुछ पर-प्रत्यय के रूप में मूल रूप के पश्चात् प्रयोग में लाये जाते हैं। केवल शब्द के स्तर पर ही निषेधात्मक/नकारात्मक प्रक्रिया सम्भव नहीं, अपितु वाक्य के स्तर पर भी यह प्रक्रिया बहुत प्रचलित है। यह आवश्यक नहीं कि केवल नकारात्मक अंशों द्वारा ही नकारात्मक वाक्य की संरचना हो। लेकिन कुछ वाक्य ऐसे भी उपलब्ध होते हैं, जिनमें बिना किसी नकारात्मक अंश के परोक्ष रूप में नकारात्मक अर्थ होता है। इस लेख में कांगड़ी बोली में प्रयोग होने वाले नकारात्मक अंशों के प्रयोग के बारे में अध्ययन किया गया है।

रूपित/शब्द स्तर पर निषेधात्मक/नकारात्मक प्रक्रियाः

शब्द/रूपित स्तर पर प्रयोग होने वाले कुछ नकारात्मक अंश इस प्रकार हैं जैसे अ, नि, अन, निर, न, बे, जो मूल रूप से पहले पूर्व प्रत्यय के रूप में प्रयोग होते हैं। उदाहरणतया है।

पूर्व प्रत्यय	+	मूल रूप	=	शब्द
अ	+	ज्ञान	=	अज्ञान
नि	+	रोग	=	निरोग
अण	+	बन	=	अणबन
न	+	लैंक	=	नलैंक
न	+	पसन्द	=	नपसन्द
बे	+	मौके	=	बेमौके
बे	+	मौत	=	बेमौत
बे	+	बगता	=	बेबगता
निर	+	पेक्ष	=	निरपेक्ष

वह पर-प्रत्यय जो मूल रूप के पश्चात् नकारात्मक अंश के रूप में प्रयोग होते हैं। पूर्व प्रत्यय की अपेक्षा बहुत सीमित हैं। पर-प्रत्यय के केवल एक या दो अंश ही नकारात्मक रूप में प्रयुक्त होते हैं जैसे हीन इत्यादि।

मूल रूप	+	पर-प्रत्यय	=	शब्द
कारज	+	हीन	=	कारजहीन
दुख	+	हीन	=	दुखहीन
दर्द	+	हीन	=	दर्दहीन

कुछ शब्दों में नकारात्मक अंशों की आवश्यकता नहीं होती। शब्द के विपरीत ही नकारात्मक शब्दों का प्रयोग होता है, जैसे :

भला — बुरा
पास फेल
खट्टा—मीठा
छोटा—बड्डा

उपर्युक्त नकारात्मक शब्द नकारात्मक प्रत्ययों से बद्ध नहीं है, अपितु स्वतन्त्र रूप लिए हुए है। जैसे भला का अर्थ हैं, जो बुरा नहीं है, और बुरा का विपरीत अर्थ है, जो भला नहीं है। इन शब्दों का मूल रूप ही नकारात्मक है। कुछ नकारात्मक शब्दों का प्रयोग वाक्य में इस प्रकार किया जा सकता है।

सह निरोग है—उजो कोई रोग नी है।
सह अनजान है—उजो कुछ मलूम नी है।
सह फेल है —सह पास नी है।
सह बेसहारा है —उहदा कोई सहारा नी है।
सह दुःखहीन है—उजो कोई दुख नी है।

उपर्युक्त वाक्य निषेधात्मक मान लिए हुए हैं। अतएव नकारात्मक अंश के प्रयोग द्वारा वाक्य की सरंचना में भी थोड़ा सा परिवर्तन हो गया है। जैसे : सर्वनाम में परिवर्तन व अन्य सहायक शब्दों का अन्य सहायक शब्दों का आंगन आदि।

वाक्य स्तर पर नकारात्मक प्रक्रिया।

वाक्य स्तर पर नकारात्मक शब्द रूप आबद्ध नहीं होते, बल्कि अपने आप में स्वतन्त्र होते हैं। वाक्य स्तर पर प्रयोग होने वाले नकारात्मक अंश नी, ना, थोड़ी, मत, क्या इत्यादि है। इन शब्दों के प्रयोग से जो स्वतन्त्र रूप में नकारात्मक मान लिए हुए हैं। साधारण वाक्य नकारात्म हो जाते हैं।

यदि एक वाक्य सत्य है, तो दूसरा उसका खण्डन करता है।

Seusen (1969 : 1.59) ने निषेधात्मक की परिभाषा इस प्रकार दी हैं। वह वाक्य निषेधात्मक हो सकता है, जिसकी गहन सरंचना में निषेधात्मक तब वाक्य लवों के क्रम के सब से दाहिनी ओर आकर उस वाक्य के माध्यमिक प्रस्ताव के अर्थो को बदलता या प्रभावित करता है।'' वाक्य मे निषेधात्मक अंशों के प्रयोग से पूर्व संदर्भ पर विचार किया जाना आवश्यक है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो किसी भी विशेष शब्द का प्रयोग विशेष संदर्भ से जुड़ा हुआ होता है, जिस प्रकार संबोधित शब्दों का प्रयोग समाज भाषा विज्ञान की दृष्टि से विशेष संदर्भ में विशेष रिश्ते के अनुसार होता है। उसी प्रकार शब्दों का प्रयोग संदर्भ हीन नहीं होता। वह किसी न किसी विशेष स्थिति से जुड़े हुए होते हैं। चाहे वह किसी बाह्य या आन्तरिक स्थिति से ही जुड़े हुए क्यों न हो। उदाहरणतया : ''ऐह किताब मअत पढ़आ'' यह किताब मत पढ़। इस वाक्य में किताब न पढ़ने से सम्बन्धित कई पूर्व धाराएं जुड़ी हुई है, जो परस्पर मेल द्वारा विशेष संदर्भ का ताना-बाना बुनती हैं। यह धारणाऐं कई तरह की हो सकती है।

1. किताब का न पढ़ना आदेश भी हो सकता है। विनम्र रूप में विनती भी की जा सकती है, या श्रोता के प्रति क्रोध का प्रगटाव भी हो सकता है।

2. किताब अच्छी नहीं है या पढ़ने योग्य नही है, इसलिए पढ़ने पर प्रतिबन्ध लगाया गया है।

3. किसी अन्य किताब पढ़ने के लिए प्रेरित किया जा रहा है।

4, वक्ता के वाक्य उच्चारण के ससय किताब पढ़ने की प्रक्रिया जारी है।

5. वक्ता की मनोवैज्ञानिक स्थिति द्वारा यह भी अनुमान लगाया जा सकता है, कि किताब का पढ़ना बन्द होना चाहिए।

उपर्युक्त धारायें कल्पित नहीं हैं, अपितु आन्तरिक दृष्टि से वाक्य की संरचना से जुड़ी हुई हैं। इसी वाक्य को अन्य वाक्यों द्वारा विभिन्न रूपों से इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता ह।

ऐह किताब मअत पअढ़नीओ (विनम्र)
ऐह किताब मअत पअढ़ा (आदेश)
ऐह किताब कजो पअढ़ादा (क्रोधित)

1. यह किताब मत पढ़ो क्योंकि इसमें वियष वस्तु के बारे पर्याप्त जानकारी नहीं दी गई है, या इस किताब में अच्छी सामग्री नहीं है यह पढ़ने योग्य तही है।

2. यह किताब निम्न स्तर के लिए है, इसलिए वह किताब पढ़ो जो तुम्हारे स्तर की हो।

3. निरन्तर प्रक्रिया पर किसी कारण वश प्रतिबन्ध लगाया गया है।

4. श्रोता को किताब अच्छी नहीं लग रही इसलिए, अन्य किताब पढ़ने के लिए प्रेरित

किया जा रहा है।

वाक्य में नकारात्मक अंश 'मत' किताब पढ़ने की क्रिया का निषेध करता है. इसके विपरीत सकारात्मक वाक्य जैसे एह् किताब पऊढ़ो, यह किताब पअढ़ो की ओर ध्यान दिया जाए तो सभी धारणाओं में परिवर्तन हो जाएगा। निषेधात्मक अंशों का वाक्य में प्रयोग स्थिर नहीं होता। अपितु परिवर्तित होता रहता है। इन नकारात्मक अंशों के स्थान परिवर्तन से वाक्य के अर्थों में भी परिवर्तित होता हैं, या नहीं यह भी विचारणीय है।

साधारण वाक्य स्तर :

साधारण वाक्य स्तर पर प्रयोग होने वाले नकारात्मक अंश ना, नी, मत, थोड़ी इत्यादि है। इन अंशों का वाक्य में प्रयोग इस प्रकार है।

सह रोटी खादा है – वह रोटी खा रहा है।
सह रोटी नी खादा—वह रोटी नहीं खा रहा है।
सह स्कूले जांदा है—वह स्कूल को जाता है।
सह स्कूले नी जांदा - वह स्कूल नहीं जाता है।

उपर्युक्त उदाहरणों में नकारात्मक अंश 'नी' के प्रयोग से सहायक क्रिया लुप्त हो गई है। अन्य कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

मेरी गल्ला ठीक है – मेरी बात ठीक है।
मेरी गल्ल ठीक नी—मेरी बात ठीक नहीं।
मेरा भाऊ बमार हीई गिया - मेरा भाई बिमार हो गया।
मेरा भाऊ बीमार नी होईया मेरा भाई बिमार नहीं हुआ।
सहचल्ली गेया—वह चला गया।
सह नी गेया—वह नहीं गया।
सह मिजो दिक्खी ने उठ बैठी—वह मुझे देखकर उठ बैठी।
सह मिजो दिक्खी ने नी उठी—वह मुझे देखकर नहीं उठी।

उपर्युक्त उदाहरणों में सहायक क्रियाओं गिया, गेया है का लोप हो गया है व मुख्य क्रिया ही शेष रह गई है, सहायक क्रिया ही शेष रह गई है, सहायक क्रिया मुख्य क्रिया के बल में वृद्धि करती है। इस क्रिया का लोप इसलिए होता है, क्योंकि वक्ता स्वयं ही अपनी बात के माध्यमिक प्रस्ताव का खण्डन कर रहा होता है, इसलिए सहायक क्रिया रूप की आवश्यकता नहीं होती। अन्य नकारात्मक अंशों के प्रयोग के उदाहरण निम्नलिखित है।

मत्तियां गल्लां मत बना 'बहुत बातें मत बना,
सिर खुरकणे दी भी बेहल नी' सिर खुजलाने का भी समय नहीं,

मैं जिकर भी न ना करां' मैं जिकर भी न करुं,

मैं हथ थोड़े पकड़े, मैं हाथ थोड़े पकड़े'

उपर्युक्त वाक्यों में प्रयोग होने वाले नकारात्मक अंशों का वाक्य की संरचना में प्रयोग, हिन्दी के नकारात्मक अंशों के प्रयोग के बिल्कुल समानान्तर है। अधिकतर वाक्यों में 'नी' अंश के प्रयोग की बहुलता है।

मिश्रित वाक्य स्तर :

मिश्रित वाक्यों से अभिप्राय वाक्य की संरचना में उत्पन्न होने वाली जटिलता से है। मिश्रित वाक्यों में नकारात्मक अंशों का प्रयोग दो बार किया गया है, दोहरे नकारात्मक वाक्यों का अपना नकारात्मक मूल्य होता है, जो एक दूसरे के विपरीत कार्य करता है, एवं वाक्य सकारात्मक हो जाता है। उदाहरणतया :

ना मैं उजो निहालियां, ना सह, जाईया--'न मैंने उसका इन्तजार किया न वह गया, इस वाक्य में दो उपवाक्यों है। जो एक दूसरे के बिना अधूरे हैं, व जिनमें सर्वनाम से पूर्व नकारात्मक शब्द 'ना' का प्रयोग किया गया है, यदि यह दोनों नकारात्मक शब्द एक दूसरे के विपरीत कार्य करें तो वाक्य सकारात्मक हो जाएगा। जैसे :

मैं उजो निहालिया, सह आईया---'मैंने उसकी इन्तजार की वह आया। एक उपवाक्य के नकारात्मक तत्व द्वारा दूसरा उपवाक्य भी प्रभावित होता है। उदाहरणतया :

मैं उजो नी निहालिया, पर सह आईया - मैंने उसका इन्तजार नहीं किया पर वह आया।

मैं उजो निहालिया, पर सह नी आईया - मैं उसका इन्तजार किया पर वह नहीं आया।

दोंनों उपवाक्यों में केवल एक-२ नकारात्मक अंश का प्रयोग किया गया है। जिनके प्रयोग उपवाक्य एक दूसरे से प्रभावित हो रहे हैं। कुछ मिश्रित वाक्य संदर्भ द्वरा जुड़े हुए प्रतीत होते हैं उदाहरणतया :

वक्ता—सह फेल होई गिया—वह फेल हो गया।

श्रोता—नी, ऐह नी होई सकदा—नहीं यह नहीं हो सकता।

वक्ता—नी, ऐह होई सकदा—नहीं यह हो सकता है।

द्वितीय वाक्य में श्रोता वक्ता की बात का खण्डन कर रहा है, व नकारात्मक अंशों का प्रयोग दो बार कर रहा है, अतएव अपनी बात के माध्यमिक प्रस्ताव को सकारात्मक रूप देने का प्रयत्न कर रहा है। वक्ता केवल एक ही नकारात्मक अंश द्वारा श्रोता के प्रस्ताव का खण्डन कर रहा है।

किसी वाक्य को अत्यधिक नकारात्मक रूप होंने के लिए उपवाक्यों में दोहरे नकारात्मक अंशों का प्रयोग भी होता है, जैसे :

नां नां, मत मन्ना तुसां, नी नहीं मत मानों आप

नां नां, मैं नी करी सकदा एह, नहीं नहीं मैं नहीं कर सकता है।

सुर-लहर द्वारा नकारात्मक प्रक्रिया :—

सुर-लहर द्वारा नकारात्मक प्रक्रिया से यह अभिप्राय है, कि जिस लव या वाक्यांश का निषेध करना होता है, वहां सुर लहर द्वारा प्रभावित होता है, उदाहरणतया :

मैं कताब नी पअढ़गा —मैं किताब नहीं पढ़ूंगा (साधारण वाक्य)

मैं कताब नी पअढ़गा मैं किताब नहीं पढ़ूंगा (कोई और पढ़ेगा)

मैं कताब नी पअढ़गा —मैं किताब नहीं पढ़ूंगा (अपितु कुछ और पढ़ूंगा)

मैं कताब नी पअढ़गा —मैं किताब नहीं पढ़ूंगा (बल्कि वैसे ही देखूंगा ।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि उन शब्दों पर बल दिया जा रहा है, जिनका निषेध करना होता है । वाक्य में बलवृद्धि शब्दों के साथ ही बलवृद्धि लव ई बी भी प्रयोग में लाये जाते हैं जैसे :

मैं किताब पअढ़गा ई. नी—मैं किताब पढ़ूंगा ही नहीं ।

मैं बी नी पअढ़गा मैं भी नहीं पढ़ूंगा ।

वाक्य क्रम में परिवर्तन द्वारा भी वाक्य को नकारात्मक बनाया जा सकता है, जिस अंश का निषेध होता है, उसका क्रम बदल दिया जाता है, व उसके साथ निषेध अंश जुड़ जाता है। निम्नलिखित वाक्य में लड़ने की क्रिया का निषेध क्रम परिवर्पन द्वारा हो रहा है, परन्तु वाक्य के अर्थों में इतना ही परिवर्त हो रहा है । कि एक वाक्य साधारण रूप है, व दूसरा वाक्य मनोवैज्ञानिक भाग से जुड़ा हुआ है ।

सांझो ने मअत लअड़ा हम से/मुझ से मत लड़ो/लड़

मअत लअड़ा सांझो ने मत लड़ो मुझ से/हम से (क्रोधित व्यवस्था)

मेरे बक्खी मअतं बोलदी—मेरे साथ मत बोलना

मअत बोलदी मेरे बक्खो—मत बोलना मेरे साथ (क्रोधित अवस्था)

दोहरे उपवाक्य वाले वाक्यों में प्रथम उपवाक्य की सुरलहर द्वारा दूसरे उपवाक्य के विषय में पूर्व धारणा बनाई जा सकती है

मैं हुन रोटी नी खांगा (मैं चाय पींगा) —मैं अब रोटी नहीं खाऊंगा मैं चाय पींऊगा)

मैं हुन रोटी नी खांगा (डिब्बे च पांगा) मैं अब रोटी नही खांऊगा बल्कि डिब्बे में डालूगां)

इसी प्रकार एक वाक्य को विभिन्न स्थितियों में विभिन्न तत्वों के प्रयोग द्वारा भी देखा जा सकता है ।

राम स्कूल जाई ने पअढ़गा "राम स्कूल जाकर पढ़ेगा" राम नी शाम स्कूल जाई ने पअढ़गा" राम नहीं श्याम स्कूल जाकर पढ़ेगा ।

शाम स्कूल जाईने नी इत्थू बैठी ने पअढ़गा शाम स्कूल जाकर नहीं यही बैठ कर पढ़ेगा

शाम इत्थू बैठी ने नी घरे जाई ने पआढ़गा—शाम यहां बैठ कर नहीं घर जाकर पढ़ेगा"

इस प्रकार नकारात्मक लवों के साथ प्रयुक्त होने वाले विभिन्न विषयों में परिवर्तन होता है जैसे :—

राम नी शाम

स्कूल जाईने नी
इत्थू बैठी ने नी

प्रश्नवाचक वाक्यों में नकारात्मक प्रक्रिया को क्या लव द्वारा प्रदर्शित किया जाता है । वाक्य में क्या व नकारात्मक लव नी दोनों का प्रयोग हो भी सकता है और नहीं भी । जैसे :

क्या तू कदी चाह नी बणाईयों ? "क्या तूने कही चाय नही बनाई ।
बोलदे कैनी, कुन हन तुसां ? बोलते क्यों नहीं कौन हो आप ।

प्रश्न वाक्यों द्वारा अविश्वास के भावों को प्रगटाया जाता है । व वक्ता हो या ना दोनों में से किसी भी उत्त र की उम्मीद करता है, जैसे उपर्युक्त वाक्यों में वक्ता श्रोता से हो या ना जवाब की इच्छा प्रगट कर रहा है ।

कुछ प्रश्नवाचक वाक्य ऐसे भी होते हैं, जिनमें वक्ता को सकारात्मक या नकारात्मक सूचना की आशा नहीं होती अपितु श्रोता के प्रति क्रोध का प्रदर्शन होता है, उदाहरणतया :

"पता नी इस गुओर जो कियां नौकर रख लिया" पता नहीं गंवार को कैसे नौकर रख किया ।
क्या तिसा दे कन बहरे हन ? क्या तुम्हारे कान बहरे हैं ?
क्या तुहां जो कोई बजारू त्रीमत नजर ओआ दी ? क्या तुम्हें कोई बजारी औरत नजर आ रही है ।

कुछ वाक्य ऐसे भी होते हैं, जिनमें किसी भी प्रश्नवाचक लव का प्रयोग नहीं किवा गया, लेकिन फिर भी प्रश्न चिन्ह लिये हुए हैं ।

जांदा है कि नी ? जाता है कि नहीं ।
सच्च तेरा कोई नी ऐ ? सच्च तेरा कोई नहीं है ।

कुछ प्रश्नवाचक वाक्यों में नकारात्मक अंश होता है, जो आश्चर्य युक्त भावों का प्रगटाव करता है जैसे :

दिख शादी लाल कुथी परौणे ता नी आई दुके ?
देख शादी लाल कहीं मेहमान तो नहीं आ गए ।

कुछ प्रश्नवाचक वाक्यों में प्रश्न का बदल रूप भी सुझाव के रूप में वक्ता के पास ही होता है जैसे :

जे मलूम था तो पुच्छने दी क्या जरूरत थी ? अगर मालूम था तो पूछने की क्या जरूरत थी ।
प्रश्नवाचक वाक्य की क्रिया जब वियोजन के अधीन प्रयोग होती है, तो वक्ता को दो रूपों में से एक रूप को दृढ़ करना होता है, जैसे

तू जांदा है कि नहीं ! तू जाता है कि नहीं

थोंए थोंए चलगा ना ? तुम ध्यान से चलोगे न।

उपर्युक्त वाक्य में श्रोता जाने व न जाने की क्रिया में से किसी एक को दृढ़ करता हैं। यह श्रोता पर भी निर्भर करता है कि वह कौन सी क्रिया को दृढ़ करना चाहता है, वाक्य के अन्त में ना का प्रयोग वक्ता द्वारा प्रश्नवाचक के सकारात्मक रूप में उत्तर की प्रतीक्षा करता है।

उपर्युक्त व्याख्या द्वारा स्पष्ट है, कि नकारात्मक प्रक्रिया का प्रयोग संज्ञा, विशेषण, क्रिया-विशेषण, परसर्ग आदि के साथ होता है। विस्मयादिक के साथ नकारात्मक प्रक्रिया सम्भव नहीं है।

उत्तर क्षेत्रीय भाषा केन्द्र
पंजाबी यूनीवर्सिटी पटियाला

'कांगड़ा घाटी में इन्द्रु नाग'

● रतन लाल चौधरी. एम. ए.

हिमाचल प्रदेश देवताओं की धरती है। यहां के जन-जीवन में देवताओं के प्रति अटूट श्रद्धा एवं विश्वास है। भले ही आज के विज्ञान के प्रसार से कुछ बातों से लोगों का विश्वास उठता जा रहा है। तो भी कुछ तथ्य ऐसे हैं जिन्हें वैज्ञानिक भी मानकर चलने में बाध्य हैं। भारतीय धर्म एवं संस्कृति में तेंतीस करोड़ देवी-देवता माने जाते हैं। जिनमें अधिकांश हिमाचल प्रदेश में वास करते हैं। जिसका कारण यहां की भौगोलिक परिस्थिति है। भौगोलिक पर्यावरण में ही संस्कृति विकसित होती है! भले ही संस्कृति के पांच ही तत्व माने जाएं परन्तु भौगोलिक पर्यावरण के बिना संस्कृति का विकास असम्भव है। यदि पांगी-भरमौर की संस्कृति कांगड़ा की संस्कृति से भिन्न है, तो इसका मुख्य कारण भौगोलिक पर्यावरण ही है। पश्चिम और भारतीय संस्कृति में जो भिन्नता है। वह इस पर्यावरण को लेकर ही है। विज्ञान भी संस्कृति के तत्वों में से एक है। आज का वैज्ञानिक नगरों में रहता है। वह संस्कृति के दर्शन नगरों में ही करना चाहता है। वह हर वस्तु को तर्क की कसौटी से कसता है, तथा ज्ञान द्वारा हर वस्तु का विश्लेषण करता है। परन्तु वह किसी की बनाई हुई वस्तु का ही विश्लेषण है। उसका निर्माणकर्ता कौन है, यह जानने की उसे कोई आवश्यकता नहीं है। महात्मा बुद्ध के समय भी तर्क एवं ज्ञान द्वारा ही मोक्ष का साधन मान लिया गया था। वह किसी देवी देवता या भगवान् को नहीं मानते थे. फलस्वरूप भारत में बौद्ध धर्म के अवशेष मात्र ही रह गए हैं। अत: कहना होगा कि श्रद्धा तथा प्रेम से भक्ति का प्रादुर्भव होता है। और यह भक्ति ही मानव के अन्तर्मन का भोजन है, शक्ति है और है आत्म तुष्टि। इस आत्म-तुष्टि के लिए ही मानव अपना सर्वस्व त्याग कर पहाड़ों की कन्द्राओं, में गुफाओं में, वास करता है, और अन्तत: देवत्व को प्राप्त करता है।

वह भारतवासी अभागा है, जिसने हिमाचल प्रदेश नहीं देखा और वह हिमाचल वासी अभागा है, जिसने कांगड़ा घाटी का पालमपुर क्षेत्र नहीं देखा। यदि प्राकृतिक सौंदर्य की सम्पूर्णता कहीं है, तो इसी क्षेत्र में है। एक ओर गगन चुम्बी हिमालय है, तो दूसरी ओर समतल घाटी है। लहलहाते वृक्ष हैं। चारों ओर हरियाली है। खड्डे नाले, कुल्हें, झरने, बावड़ियों की भरमार हैं।

पानी का संकट यहां कभी नहीं होता, यदि कभी ऐसा हो भी तो 'इन्द्र नाग' की पूजा की जाती है। मीलों फैले चाय के बगीचे हैं। इन बागीचों से छन-छन कर आता हुआ शीतल समीर स्वास्थ्यवर्धक है। गगन चुम्बी हिमालय बर्फ से आच्छादित है। तो दूसरी ओर घाटी की उष्मा है। कहते हैं कि भारत हिमालय की गोद में बसा है। यदि यह वाक्य सत्य है तो यह क्षेत्र इस हिमालय के वक्ष से सटा हुआ है। ऐसा लगता है कि भारत हिमालय के इन चरणों से ही आरम्भ होता है, परन्तु यह पर्वत काश्मीर तक फैला हुआ है। इसी लिए काश्मीर से कन्या कुमारी भारत का ओर-छोर माना जाता है। यहां के लोग कर्मठ, शान्तिप्रिय तथा सीधे साधे हैं, तथा धर्म के प्रति इनकी अटूट आस्था है। देवताओं के प्रति इनकी आस्था के फलस्वरूप आपत्ति के समय यह देवता इनकी अनेक आधियों तथा व्याधियों से रक्षा करते हैं।

'इन्द्र नाग' वर्षा का देवता माना जाता है। इन्द्र देवता आर्यों का आराध्य देव था ऐसा हमारे वेदों में संकेत मिलता है। परन्तु जब आर्यों और वैष्णवों में संघर्ष हुआ तो यह तय पाया, कि राजशक्ति आर्यों के हाथ में रहेगी तथा धर्मशक्ति वैष्णवों के हाथ धर्म के नियमावक ब्राह्मण हो गए। इनका आराध्य देव विष्णु था। कालान्तर में विदित हुआ कि वैष्णव ने इन्द्र की छवि बिगाड़ कर उसे कामुक तथा विषय-भोगों से लिप्त इन्द्र देव बना डाला है। तथा अपने आराध्य देव विष्णु को सर्वोपरि देवत्व के रूप में स्थापित कर दिया। कृष्णावतार के पूर्व वर्षा देने वाले देवता इन्द्र ही माने जाते थे। जब श्री कृष्ण ने लोगों को कहा कि आज से तुम्हें इन्द्र से वर्षा के लिए पुकारना नहीं चाहिए, अपितु मैं तुम्हें वर्षा दूंगा। फलस्वरूप इन्द्र देव क्रोधित हुए और ब्रज पर वर्षा करने के मेघों को आदेश दे दिए। श्री कृष्ण जी ने गोवर्धन धारण कर ब्रज की रक्षा की जब मेघ बरस कर थक गए तो इन्द्र स्वयं कृष्ण जी से मिलने आए, विधि के अनुसार श्री कृष्ण के जन्म के बाद इन्द्रदेव की शक्ति क्षीण हो जाती थी यह मान कर इन्द्र देव स्वर्ग को चले गए। ऐसा किम्बदन्तियों एवं कथाओं में सुना जाता है। परन्तु इन्द्र को नाग के रूप में मानना समझ में नहीं पड़ता। भले ही नाग पूजा सारे भारत वर्ष में होती है। काश्मीर में नाग जाति के राजा भी हुए हैं जिन्होंने कई वर्षो तक यहा राज्य किया था, और आज भी कांगड़ा जिला में नाग जाति के ब्राह्मण रहते हैं। तो भी नाग जाति मानव से सम्बन्ध है और नाग विशेष जीव सर्प से संबद्ध है।

सम्भवत: नाग को देवता के प्रतीक में मान लिया हो। क्योंकि हिमाचल में अधिकांश देवताओं को नाग के प्रतीक में मान कर पूजा अर्चना की जाती है। यह नाग देवता कुछ मांसाहारी है तो कुछ शाकाहारी हैं। अर्थात् कुछ को बलि दी जाती है, कुछ कड़ाह रोट से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। 'इन्द्र नाग की पूजा-अर्चना कब से आरम्भ हुई यह कहना तो कठिन है। तो भी यह आज तक यह जारी है। इन्द्र नाग की मढ़ी 'मन्दिर' नगरी नामक स्थान पर है। यह स्थान पालमपुर-धर्मशाला वाया नगरी में स्थित है। यहां पर शामलात भूमि पर इन्द्र नाग की मढ़ी है। यह

देवता एक भारी भरकम सांप के रूप में विचरण करता हुआ, यथा-कदा दिखाई देता है। कभी-2 यह एकान्त में चर रही गऊओं का दूध भी पी लेता है। इसकी पूजा अर्चना नियमित रूप में नहीं की जाती अपितु विशेष-विशेष समय पर ही की जाती है। यह स्पष्ट तब होता है, जब इसकी मढ़ी के आस पास ग्वाले टट्टी कर जाते हैं, या इधर उधर बिखरे मृत पशुओं के पंजरों की हड्डियां, गीदड़, कुत्ते या गीधें खींच कर ले आते हैं. और इन्हें देवता को मढ़ी के आस पास छोड़ देते हैं। जब यह रूष्ट होता है, तो अन्यत्र चला जाता है। कभी कभी यह अपनी बहिन रौड़ी के पास चला जाता है। यह स्थान पठानकोट-पालमपुर मुख्य सड़क पर है, और पालमपुर से पठानकोट की ओर है, मील की दूरी पर अरला नामक स्थान पर है। वहां से इसे पालकी में लाया जाता है। सारे इलाके के लोग पुजारी सहित पालकी ले कर जाते हैं। पुजारी खेलता है। प्रश्न उत्तर होते हैं। लोग क्षमा मांग लेते हैं, तो 'इन्द्र नाग' अपने स्थान पर चलने को तैयार हो जाते हैं। पालकी जब देवता को मनाने के लिए लाई जाती है, तो उसका वास्तविक भार ही होता है, पर जब वापिस लाई जाती हैं, तो वह बहुत भारी हो जाती है। कभी-कभी देवता महाराज रास्ते में चलते लोगों से कुछ अपमान जनक बातें सुन कर रास्ते में ही रूष्ट हो कर उतर पड़ते हैं। ऐसी हालत में इन्हे फिर से मनाना होता है। जब यह रूष्ट होते हैं तो ज्येष्ठ तथा आषाढ़ महीने में वर्षा नहीं होती फसल लगाना कठिन हो जाती है। ज्यों ही इसे मनाया जाता है वर्षा हो जाती है। कभी-कभी यह असौज के महीने में धान की फसल पर ओलावृष्टि कर अपने क्रोध का बदला ले लेता है।

ऐसा भी माना जाता हैं कि 'पत्थर चौथ' से पहले पड़ने वाली अमावस्या की रात को देवताओं तथा डायनों में युद्ध होता है। जिसे यहां 'डगवांस' या डगांवांस' कहा जाता है। वर्ष भर में यह भयंकर रात्री होती है। 'डाऊ' (जादू-टोणा करने वाले) इसी रात अपने जन्त्र-मन्त्र तैयार करते हैं। यदि इस रात डायनें जीत जाएं तो फसल आदि को कोई हानि नहीं होती यदि देवता जीत जाएं तो फसलों को हानि होती है। क्योंकि देवता फसलों का कुछ हिस्सा अपने रिश्तेदारों की शादियों के लिए ले जाते हैं। इस बात का निर्णय करना कि देवता विजयी हुए हैं या डायनें विजयी हुई हैं, इस बात से लगाया जाता है, कि यदि रात को वर्षा हुई हो तो देवता जीतते हैं अन्यथा डायनें विजयी होती हैं, क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि एक सीमा रेखा पर दोनों पक्ष आमने सामने खड़े हो जाते हैं। डायनें अपवित्र वस्तुएं तथा हड्डियां आदि देवताओं पर फैंकतीं हैं. देवता पीछे हटते हैं। यदि वर्षा हो रही हो तो देवता अपवित्र नहीं होते तथा आगे बढ़ते हैं, तथा विजय प्राप्त करते हैं। डायनों की अनेक कथाएं यहां बिखरी पड़ी हैं जिसका उल्लेख मैं अन्य लेख में करूंगा।

चूंकि 'इन्द्र नाग' को देवता माना जाता है, इसलिए वह फसल को नष्ट करके अपना हिस्सा ले जाता है। पालमपुर के पहाड़ के साथ-साथ लगने वाले स्थान पर धान की फसल सर्वोत्तम होती है, और फसल पकने पर ओलावृष्टि होने का भय रहता है। इसलिए किसी योग्य पुजारी द्वारा

फसल को 'कार' (सीमा रेखा) बान्धी जाती है। फसल को कोई क्षति न होने की स्थिति मे उस पुजारी को फसल का कुछ भाग दिया जाता है। 'कार' बान्धी हुई सीमा के भीतर नंगे सिर चलना, चमड़े की जूती पहन कर जाना, तथा बन्दूक ग्रादि चलाने की मनाही कर दी जाती है। ग्रन्यथा 'कार' के टटने का डर रहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह धार्मिक विश्वास ही है जो मानव को चलने-फिरने की शक्ति प्रदान करते हैं। जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं।

पाठक वृन्द से ग्रनुरोध है कि ग्रपने जीवन के ग्रमूल्य क्षणों में से कुछ क्षण निकाल कर उपयुंक्त स्थान पर जा कर प्राकृतिक सर्जना शक्ति से परिपूर्ण सौंदर्य का दृगपान ग्रवश्य करें। ग्रौर देखें कि प्राकृतिक सर्जन शक्ति के ग्रागे मानव सर्जन शक्ति कितनी तुच्छ है, कितनी कृत्रिम है। यह देवताग्रों की धरती है, ऋषि-मुनियों की धरती है, ग्रौर यहां निश्च्छल लोग वास करते हैं।

हि० प्र० राजकीय मुद्रणालय,
घोड़ा-चौकी, शिमला—171005

संस्कृति का जनपद : बघाट

● लेख राम चौहान हिमाचली

वे बारह घाट कौन-2 से रहे होंगे, जिनके कारण इस जनपद का नाम 'बघाट' पड़ा, इस बारे में आज निश्चय पूर्वक कुछ कह पाना कठिन है। वैसे इस जनपद के 'घाट' शब्द पूर्वक कुछ स्थानों के नाम इस प्रकार हैं :-ओछ घाट, दींबधाट, गाईघाट, शालाघाट, स्वारघाट, मराड़ीघाट, शक्तिघाट दयारघाट, गुग्गाघाट, कण्डाघाट, कैथलीघाट तथा चम्बाघाट। सन् 1948 में जिन इक्कतीस पहाड़ी रियास्तों से हिमाचल का निर्माण हुआ था,उन में से एक ,बघाट भी थीं। इसी सीमा दक्षिण तथा उत्तर में पिंजौर से कैथलीघाट तक थी। पूर्व और पश्चिम में इसकी सीमाओं का निर्धारण असणी तथा गम्बर खड्ड से होना था। इन्हीं भौगोलिक सीमाओं में थोडे-बहुत फेर बदल के बाद आज भी 'बघाटी'बोली आपसी सम्पर्क के माध्यम के रूप में प्रयुक्त होती है।

बघाटी-जनपद के ये घाट वाराणसी के प्रसिद्ध घाट से भिन्न है। केवल चम्बाघाट की उपमा काशी के मणिकर्णिकाघाट से दी जा सकती है। पहाड़ में दो पर्वतश्रृंखलाओं के मध्यवर्ती निम्नतम विभाजक स्थल को घाट कहा जाता है, ये स्थान प्रायः दर्रों जैसे होते हैं।

यह जनपद कालका शिमला सड़क तथा रेल मार्ग के दोनों ओर दस-बीस किलोमीटर की दूरी में स्थित है। सड़क मार्ग को यहां जरनैली सड़क तथा रेलमार्ग को 'रेलवाई' कहा जाता है। 'जरनैली' सड़क के निर्माण में इस जनपद के 'भलखू' नामक व्यक्ति का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसे आरम्भ में कार्टरोड़ या 'छकड़ा सड़क' कहा जाता था, तथा इस पर बैलगाड़ियां या घोड़ा गाड़ियां चला करती थी। रात के नौ-दस बजे एक 'घोड़ा गाड़ी' डाक लेकर सोलन से कैथलीघाट की ओर जाती थी। साईस कोड़े सटकारता हुआ इसे तेजी से भगा ले जाता था। कई बार इसके पीछे मनचला करयाला प्रेमी भी लटक जाया करता था, जो कोड़ों की मार खाता हुआ अपने गन्तव्य तक पहुंचने के लिए इस गाड़ी का उपयोग करता था। सुबह के तीन चार बजे वह उसी गाड़ी में लटकवा कर घर लौट आता था। घरवालों को पता भी नहीं चलता था कि कोई रात को आठ दस मील जा कर 'करयाला' देख आया है।

रेल मार्ग का निर्माण : उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम दशक में कालका शिमला रेलमार्ग का निर्माण प्रारम्भ हुआ। बीसवी शताब्दी के प्रथम दशक में इसका निर्माण कार्य पूर्ण हो गया था स्थान-2 पर बनी एक सौ तीन सुरंगों से युक्त इस रेलमार्ग को विश्व में इंजीनियरों की प्रतिभा का एक अद्भुत करिश्मा माना जाता है। कालका से ये दोनों मार्ग आंख मिचौली सी खेलते हुए पहाड़ियों में ऊपर की ओर चढ़े चले जाते हैं।

बनारस का किला : कालका से कुछ मोड़ों के आगे ही इन मार्गों से दक्षिण पूर्व की पहाड़ियों के एक शिखर पर बना एक किला दिखाई देता है। इसे 'बनारस का किला' कहते हैं। ऐसा ही एक किला 'जौणा' धार पर बना है। ये किले इस जनपद पर गोरखों के आक्रमण का अवशेष है। ऐसा ही एक आक्रमण पटियाला के महाराजा ने भी किया था' जिसके फलस्वरूप इस जनपद के कुछ इलाके पटियाला रियासत में चले गए थे। सन् १९६६ में पटियाला रियासत के ये इलाके भी हिमाचल को प्राप्त हो गए. जिन्हें कभी छीन लिया गया था। सन् १९७१ में सोलन जिले का अस्तित्व प्राप्त हुआ। इस प्रकार पुरानी 'बघाट' रियासत को राजधानी सोलन को जिला मुख्यालय होने का गौरव प्राप्त हुआ।

तब की वह 'छकड़ा सड़क' भी अब राष्ट्रीय मार्ग बन चुकी है तथा इस में दिन रात घबराते हुए सैकड़ों आधुनिकतम वाहन अज्ञात स्थानों की ओर दौड़े चले आते हैं। इन वाहन में देश विदेश के पर्यटक शिमला आते जाते हैं। जून से नवम्बर तक मधुर गन्ध से वातावरण में अजीव सी मस्ती विखरते हुए सेबों से लदे ट्रक इन सड़क को भर सा देते हैं।

करोल टिब्बा : करोल 'टिब्बे' या टिले को इस जनपद की दूरी माना जा सकता है। इसके दक्षिण-पश्चिम में चम्बाघाट तथा उतर-पूर्व में कन्डाघाट है। चम्बाघाट से कन्डाघाट की सड़क तथा रेलमार्ग अत्यन्त रम्य है। यह टीले की पूर्वी उपत्यका से होकर गुजरता है। यहां से पूर्व की ओर विशाल तथा मनोरम प्राकृतिक भू-दृष्य दिखाई देता है, जो चूड़धार तथा चायल टिब्बे तक फैला हुआ है। करोल की एक अधित्यका पर सिद्धबाबा का मन्दिर है तथा एक गहरी गुफा है। इसकी गहराई आज तक मापी नहीं जा सकी है। एक जनश्रुति के अनुसार इस गुफा का विस्तार पिंजौर के प्रसिद्ध उद्यान तक है, जहां करोल का शीतल तथा मधुर जल एक चश्मे के रूप में पहुँचता है। जिसमें बान के पत्ते भी देखे जा सकते हैं।

इस टिब्बे के पश्चिमोत्तर की ओर से भी एक पगडन्डी गुग्गाघाट होती हुई चम्बाघाट से कन्डाघाट पहुँचती है। अब यह पगडन्डी भी सड़क का रूप धारण कर रही है। इस प्रकार करोल टिब्बे की परिक्रमा पूर्ण होती है। इस टिब्बे के शिखर पर एक देवी मन्दिर है, जो अब खन्डहर बन चुका है।

मतीबठ का टिब्बा : इस जनपद की अन्य पहाड़ियों में मतीबठ का टिब्बा बड़ोग-धार,

सोमसी

कसौली-पर्वत, बनारस-धार आदि हैं। कसौली पर्वत के शिखर पर कसौली नगर बसा है। यहां केन्द्रीय अनुसन्धान संस्थान भी है। इसी तरह की एक पहाड़ी पर डगशाई छावनी स्थित है। स्पाटू में गोरखा सेना का प्रशिक्षण केन्द्र है। इस जनपद के कई नगर आधुनिकता की दौड़ में अपना वैभव खो चुके हैं। इन में स्पाटू तथा कसौली विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। एक जमाना था, जब नमक, तम्बाकू जैसी रोजमर्रा की वस्तुओं को लेने के लिए भी लोगों को स्पाटू जाना पड़ता था। सांस्कृतिक परम्परा की दृष्टि से भी स्पाटू को इस जनपद का सबसे समृद्ध नगर कहा जा सकता है। इसी प्रकार कसौली किसी जमाने में अत्यन्त स्वच्छ तथा सुन्दर नगर हुआ करता था। यहां एक प्रसिद्ध दुग्ध केन्द्र भी था। इस नगर के पास ही सनावर में भारत का विश्व प्रसिद्ध कानवेंट स्कूल है। धर्मपुर में क्षय रोग का सैनिटोरियम है कहा जाता है। कि इस रोग से ग्रसित व्यक्ति के लिए चीड़ के वृक्षों की हवा बहुत लाभदायक होती है। चीड़ यहां का प्रमुख वृक्ष है। इसके अलावा यहां तूनी, खड़क, ब्यूल, पाजा, जैतून, खैर, शीशम, अखरोट, काफल, पीपल, ब्यूंस, कक्कड़, पड़ग पलाश, शरू, कैन्थ आदि वृक्ष बहुतायत में होते हैं।

फलोद्यान : हाल ही में यहां पलम, खुमानी, आड़ू आदि के फलोद्यानों का विकास हुआ है इन से इस जनपद की आर्थिक स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। नाशपाती तथा जरदालू यहां के पुराने फल वृक्ष हैं। नाशपाती को कैंथ पर कलम लगा कर विकसित करने की यहां पुरानी परम्परा रही है। इसी तरह टमाटर, मटर, शिमला मिर्च तथा गोभी के बीज जैसी नकदी फसलों के विकास से भी इस जनपद की आर्थिक समृद्धि में उल्लेखनीय योगदान मिला है।

पर्व व संस्कृति : वास्तव में यह कृषि तथा संस्कृति का जनपद है। यहां विस्तृत चरागाह तथा लम्बी चौड़ी घासनियां हैं। इसीं कारण यहां गोपालक की पुरानी परम्परा आज भी विद्यमान है। गाय को माता सदृश पूज्य माना जाता है। आश्विन महीने की पूर्णिमा को 'माल पूर्णिमा' का पर्व मनाया जाता है। इस दिन सम्पूर्ण गोधन को पुष्पमालाएं पहनायी जाती है। इसी दिन सलोगड़ा में (खेल) नामक उत्सव का आयोजन भी होता है। 'खेल' तथा मेले इस जनपद के लोकोत्सव है। 'खेलों' में 'ठोड्डे' अर्थात तीरन्दाजी का प्रदर्शन तथा भैंसों की लड़ाई जैसी जनरूचि के कार्य-क्रमों का आयोजन होता है। कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की दूज तथा तीज को बसाल में तथा पूर्णिमा को बोहच में भी इसी तरह मेलों का आयोजन होता है। आषाढ़ महीने के पहले रविवार को करोंल तथा दूसरे रविवार को सोलन का प्रसिद्ध मेला होता है। इस मेले में कुश्तियों के आयोजन की एक पुरानी परम्परा रही है।

इस जनपद में सौर मास की सक्रांति को पवित्र पर्व माना जाता है। इससे पहले दिन को 'एकखे रौ' अर्थात एक ही रहता है, कहा जाता है। इस दिन महिलाएं अपने केश नहीं धोती। इस जनपद में काल गणना सौर या चन्द्र मासों के आधार पर होती है। भाद्रपद महीने के कृष्ण पक्ष

हिमाचली में अ की ध्वनि और वर्तनी

● श्यामलाल डोगरा

तद्‌यथा भगवान् बुद्धः संबुद्धोऽकार सम्भवः ।
अकारः सर्ववर्णाग्र्यो महार्थः परमाक्षरः ॥
(मञ्जुश्रीनाम संगीतिः २८)

प्रस्तुति

यारोपीय तथा अन्य अनेक भाषाओं में अकार को वर्णमाला में प्रथम स्थान दिया गया है । संस्कृत शब्द-कोश में अकार को सृष्टिपालक विष्णु का नाम दिया है । पवित्र प्रणव 'ओम्' का उच्चारण करने में अ पहली ध्वनि है :—

अकारो विष्णुरुद्दिष्ट उकारस्तु महेश्वरः ।
मकारस्तु स्मृतो ब्रह्मा प्रणवस्तु त्रयात्मकः ॥

अकार को सारी वैखरी वाणी की भूमि माना गया है । इसी आधार पर अन्य वर्णों के नाम रूपों की रचना मानी जाती है । प्रत्याहार सूत्रों की भूमिका में नटराज नृत्य के अवसान में जब ढक्का—बड़ा बाजा—बजा तो शिव सूत्र जाल में सब से पहले सूत्र अ इ उ ण् में अ की सुरीली तान सुनायी दी । इसे चाहे श्रुति कहें या स्मृति कहें, परन्तु आज भी संगीत शास्त्री जब आलाप आरम्भ कर श्रोता का मन आकर्षित करते हैं तो उनके मुख और वीणा की तन्त्रियां वरद अ की स्वर प्लुति से ही आह्लादित करती हैं । वाचाल तो अ अ से अभिनय कर नट का रुप धारण कर लेता है, पर मूक भी हंसता हंसाता अ अ की लय और लार से ही गुड़ के स्वाद को प्रकट करता प्रतीत होता है ।

यन्त्र तन्त्र मन्त्र में मारण मोहन वशीकरण आदि में अ की इतनी महिमा गायी गई है, कि इस विषय पर एक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया जा सकता है ।

शब्दकोश में अकारादि शब्दों का संकलन अनेक पृष्ठों में मिलता है । तर्कवाचस्पति तारानाथ भट्टाचार्य द्वारा संकलित छः भागों के संस्कृत शब्द कोश वाचस्पत्यम् के प्रथम भाग में ८२६ पृष्ठ पर्यन्त अकारादि शब्द समूह है ।

डेक्कन कालेज पुरों द्वारा प्रकाशित किये जा रहे संस्कृत शब्द कोष एन् इन्साइक्लोपीडिक डिक्शनरी ग्राफ् संस्कृत ग्रान् हिस्टारिकल प्रिन्सिपल्ज में अभी एक हजार पृष्ठों में अकारादि शब्द संग्रह चल रहा है।

पण्डित हर गोबिन्द दास त्रिकम चन्द सेठ द्वारा संकलित पाइअ-सद्द-महाण्णवो, प्राकृत शब्द महार्णव १२७८ पृष्ठात्मक में १२६ पृष्ठों में अकारादि शब्द संग्रह है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी शब्द सागर में ३९२ पृष्ठ अकारादि शब्द संग्रह के हैं।

भाई कान्ह सिंह द्वारा संकलित पंजाबी महान् कोश गुरु शब्द रत्नाकर (पटियाला १९३० ई०) में २00 पृष्ठों में अकारादि शब्द-समूह मिलता है।

जम्मू कश्मीर ललित कला संस्कृति तथा साहित्य अकादमी जम्मू द्वारा प्रकाशित श्री हंस राज पन्दोत्रा द्वारा संकलित तथा श्री श्याम लाल शर्मा द्वारा सम्पादित डोगरी-हिन्दी शब्द कोश (१९७४ई0) में २३ पृष्ठों में तथा श्री रामनाथ शास्त्री द्वारा सम्पादित डोगरी डिक्शनरी (१९७९) में ६२ पृष्ठों में अकारादि शब्द समूह दिया गया है।

इस प्रकार विविध भाषाओं के शब्द कोशो में अकारादि शब्द समूह बीस हजार शब्दो तक संगृहीत है। कई शब्दों में तो अ बलात् संयोगवस्था में आ गया है। जैसे स्नान का उच्चारण अस्नान और स्तुति का अस्तुति सुना जाता है। पहाड़ी भाषा में आश्चर्य की बात है, कि बोल चाल में व्यवहुत अकारादि शब्द समूह का शताधिक होना भी कठिन है। अभी तक संगृहीत कोशों में अकारादि शब्द दो तीन पृष्ठों तक सीमित हैं।

शब्दों की मध्यस्थिति मे अकार का उच्चारण प्रचुर मात्रा में है। अन्त में नगण्य है। आदि स्थिति में शब्द व्यवहार इस रुप में सुरक्षित हैं :—

व्यक्ति वाचक

(पुंल्लिंग): अंगद, अंसू, अकबर, अच्छर,अजै, अत्तू, अनिल, अभमन्नू, अनु अमर अमरू, आभ्रतो, अभ्रित, अरुण, अर्जेण, असनी असोक।

(स्त्रीलिंग) : अंजनी, अंजू, अछरी, अदिति, अमरी, अमिता, अभ्रिता, अरुणा, अन्नपूर्णा, अर्चना।

सम्बोधन

अड़ेआ, अड़ेओ, अड़ीए अड़ीओ, अम्बा, अब्बा, अमड़ीए।

विस्मय बोधक

अह, अहा, अहो, अच्छा, अखें।

प्रकृति परिवेश

अम्बर, अस्त, अंगरा, अन्दर, अटली, अड्डा -

कालवाचक

अन्त, अस्त, अबधि, अज्ज, अजें ।

गणना

अद्ध, अद्धा, अद्धी अधीआ, अधपक्का, अधकच्चा, अधपचद्धा, अधपागल, अधमोआ, अधखिडेआ, अधसुध, अधेड़, अधोअध, अट्ठ, अट्ठें, अट्ठी, अष्टमी ।

उपकरण

अर्घ, अच्छत, अट्टा, अट्टी, अच्छू ।

कठिनभाववाचक

अक्कड़, अक्खड़, अक्खर, अड़ंगा, अड़ंगी, अड़ा, अड़ी, अड़चरा ।

र का संयोग

अर्क, अर्घ, अर्थ, अर्थी, अर्पण, अर्ब, अर्ली ।

सानुनासिक तथा नासिका

अंस, अंसू, अंक, अंग'

अण्टसण्ट, अण्डबण्ड, अन्तर्धान, अन्तर्जामी, अन्दरेरा' अन्दरस, अन्दरून्ना, अन्दर्ला ।

अनु-उपसर्ग

अनमान, अनबाद, अनसासण, अनजोग ।

निषेधार्थक

अणखाद्धा, अणगिणत, अणजाण, अणदिक्ख, अणपढ, अणबण, अणमेल, अणसुणी, अणहोणी ।

अन्न सम्बन्धित

अनजल, अनपाणी, अनदाता, अन्नपूर्णा, अन्नप्रासन ।

विदेराज

अर्ब, अर्बी, अबरी, अब्बल, अक्कल, अक्लमन्द, अक्स, अक्सर, अर्ज, अर्जी, अर्जीनबीस, अदब, अदल-बदल, अफसर, अफसरी, अम्ल, अम्ली, अड़दली, अरदास, अस्तबल, अस्तबाज्जी, अस्तर, अस्ल, अस्ली, अलमस्त, अलगर्ज अलगर्जी, अलफ, अलफलेला ।

नामकरण

आधुनिक पद्धति में नामकरण संस्कार करते समय अकरादि नाम की छानबीन की जाती है । सेवावृत्ति वालों की धारणा है, कि यदि अ से नामकरण करेंगे तो परीक्षा परिणाम या साक्षात्कार

आदि की सूची में अ पहले आयेगा। इस विश्वास में व्यक्तिगत नाम हैं :—
अकलंकदेव, अग्रसेन, अचिन्त्यराम, अजय, अनिल, अभय, अमर।

१ ध्वनि विचार

अकुहविसर्जनीया: कण्ठा:या: द्वारा पाणिनिशिक्षा के स्थान प्रकरण में अ का कण्ठ स्थान कह कर आजकल के शब्दकोश का आश्रय लिया जाता है, और कण्ठ का अर्थ गला मान कर चलने वाले भाषा शास्त्री को तर्क वितर्क सहन करने पड़ते हैं, और सुनना पड़ता है कि तोते का भी गला होता है। यहां तक कि वैशाखनन्दन का कण्ठ तो आबालवृद्ध के मनोवेग को थाम लेता हुआ प्रतीत होता है। स्थावर जंगम जो भी प्राणी ध्वनि का व्यवहार कर सकता है, उसका अ उच्चारण ही महान् है। ऐतरेय आरण्यक में वर्णन है :—

अकारो वै सर्वा वाक्। सैषा स्पर्शान्तस्थोष्मभि र्व्यंजमाना बाह्वि नानारूपा भवति।
(ऐतरेयाण्यक ,३,७,१३)

अकार ही सारी वाणी है। वही स्पर्श, अन्तस्थ और ऊष्मा से युक्त होकर व्यक्त होती है। पुन: वह नानारूप धारण करती है। यहां तक कि वाणी में गतिरोध होने पर समय यापन के लिए अ का ही सहारा लेना पड़ता है। भूलमलैया में अ अ अ से समस्यापूर्ति की जाती है। जिसे कई लोग कहते हैं, कि जबान गोते खा रही है, या लड़खड़ा रही है। हाथ सिर हिला कर अ अ अ के उच्चारण को लिप्यंकन करने में स्वर तान के लिए विविध संकेत चिन्ह लगाये जाते हैं।

उच्चारण में अ शिथिल स्वर है। अर्धविवृत अवस्था में मध्यम और मध्य स्थान में उच्च है। इसके उच्चारण में ओंठ शिथिल रहते हैं। ये आगे पीछे या गोल नहीं होते हैं। अन्दर से आकर सीधा श्वास प्रवाह मुखविवर से निकल जाता है। दान्त, ओंठ अ के उचारण में मध्य अवस्था में शिथिल रहते हैं, पर जिन्हा निम्न मध्य अवस्था में रहती है। ऐसा उच्चारण सामान्य बोल चाल में है। विशेष हाव भाव में यह विशेष रुप धारण करता है।

शब्द की आदि स्थिति में यह मध्यवर्ती पश्च अवस्था में आता है :—संयोग मे यथा अज्ज 'आज' अक्क, 'अकना,' अम्ब, 'आम' अग्ग 'आग' अट्ठा, 'आठ'. दित्व अवस्था में दूसरे दीर्घ अक्षर से पूर्व 'अ' में स्वर तीव्रता आ जाती है। उच्चारण में समय कम लगता है। —
अच्छा, अट्ठा, अल्ला, अडडा, अम्मा।

निम्न तान में उच्चरित अ में तनिक दीर्घता आ जाती है। अ कस कर बोला जाता है :—
(अ) कर 'घर' क/ल 'भैंज' क/स 'घिस' क/ट 'घट'। उच्च तान में दोर्घता पायी जाती है :—

च/ड़ 'चढ़', ब/न 'बन्ध', अ/न्ना 'अन्धा अ/द अधी द्वितीय अक्षर यदि दीर्घ हो तो आदि स्थिति में अ अतिशिथिल प्रतीत होता है। कभी तो वाग्व्यवहार में यह सुनाई भी नहीं पड़ता है;— बजोग, बजोग्गी 'वियोग, वियोगी' में ब में अ द्रुत उचारण में ब्जोग, ब्जोगी जैसा सुनाई पड़ता है। इसी प्रकार बीमार बीमारी का उच्चारण बमार बमारी द्रुत गति में ब्मार ब्मारी सुनाई देता है।

अन्त अवस्था में तो अ की स्थिति नगण्य हैं यथा :-

राम् दास् हण्ड् 'धूम' में अन्त अ नहीं सुनाई देता है। सूक्ष्म दृष्टि से वाग्व्यवहार में यदि एकल और वाक्य रचना में सम्बद्ध अ की ध्वनि का विचार किया जाय तो साधारण, द्रुत उच्चारण में हर्ष, उन्माद, हास, अट्टहास आदि अवस्था में अ के अनेक रूप मिलते है। संस्कृत में आचार्यों ने ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त स्वरित, उच्च, निम्न, मध्य तान आदि अवस्थाओं में संवृत विवृत आदि भेद से अ के अनेक रूप बतलाये हैं। हिमाचली बोलियों में यदि अ के उच्चारण का विवेचन किया जाय तो बोली मानचित्र निर्माण की विशाल योजना बन सकती है।

हिमाचली बोलियों में अ की विविधता के सुनने में जो आनन्द आता है, उसका वर्णन लिपि बद्ध करना कठिन है। प्रत्येक ध्वनि रूप के लिए अलग अलग चिन्ह बनाने से लिपि तथा मुद्रण में कठिनता प्रस्तुत होगी। लिपि या मुद्रण में जिस ध्वनि का साक्षात्कार होता है, उसमें न तो बल होता है न राग रस। लेखन के अभ्यास से वक्ता अ के सब भेदों को एक ही रूप में बतलायेगा चाहे अ इ के निकट हो या ओ के निकट। इसके उच्चारण रूप का आभास तो श्रुतिशील अनुसन्धान कर्त्ता को ही होगा। ऐसी प्रतिबद्धता हिमाचली बोलियों में ही नहीं अपितु भारत की विविध बोलियों में भी मिलेगी। (...) जर्मन भाषा में अभिश्रुति (उमलाउत) द्वारा मन 'मनुष्य' एक वचन अभिश्रुति द्वारा मेनेर बहुवचन बन जाता है। अंग्रेजी में भी लिपिगत अ के कितने ही उच्चारण मिलते है : –

व्हट में अ, फादर में आ, फेट में ए फैट में ऐ फेअर में एअ तथा वौटर, वौर में औ या अऔ जैसा व्यवहार लन्दन निवासी से ही प्रतीत होगा, लिपि मात्र के अध्ययन से नहीं।

इसी प्रकार हिमाचली बोलियों में शब्द कोश गत अ की ध्वनि विविध रूप में सुनाई देगी। कुलुई में कन्या को कौन्या, सती को सौती प्रजा को पौरजा खबर को खौबरा सुनने में अ की गति ओ औ में होगी।

कांगड़ी तथा आस पास के क्षेत्र में मन्त्री, सन्त्री, घण्टी का उचारण मैन्त्री, सैन्त्री, घैण्टी में सुना जायेगा।

कुलुई को भांति बघाटी सिरमौरी में अड्डा को औड्डा, अर्थ को और्थ और असर को औसर बोला जायेगा। लिखने में कलाकार और बोलने में कौलाकार रुप होगा। निषेधार्थक मत मौत में श्रुतिगम्य होगा।

विविध बोलियों में इसे अ की प्रवृत्ति कहें या ए, ओ अथवा औ की प्रवृत्ति—इसके लिए नियामक तत्व कठिन साध्य होगा। अ को यदि अनेकता का स्वरुप दिया जाए तो लिपि में अनेकता आ जायेगी। यदि ए औ की अनेकता को अ की एकता में लाने का यत्न किया जाये तो ध्वनिगत रूप का नाश होगा। यह समस्या लिपि की एकता के लिए तो श्रेयस्करी है परन्तु भाषाविज्ञान की दृष्टि से सूक्ष्मता का विवेचन अनेकता में ही श्रेयस्कर होगा।

अन्य अनेक भारतीय बोलियों की भांति हिमाचली बोलियों में अ का उच्चारण शब्द के अन्त

में नहीं होता है। कदाचित् संयुक्त व्यञ्जन सत्त, श्रट्ठ में या मन्द स्वर में यह श्रुतिगम्य है।

शब्द के मध्य में आने वाले व्यज्जन के साथ अकार की समस्या वर्तनी में उपस्थित है। मन्द उच्चारण में तो यह अ सुनायी पड़ता है परन्तु द्रुत उच्चारण में इसका आभासमात्र होता है। हिन्दी के वाक्य राम करता है, और राम कर्ता है, इन दोनों का उच्चारण व्यञ्जन संयोग में कर्ता सुनायी देता है। यदि इन दोनों रूपों को लिपि में अलग न किया जाये तो परम्परा के नाश होने का भय है। एक जैसा उच्चारण वश लिखने से कोशगत परम्परा के नष्ट होने का भय है। यदि इन्हें अलग लिखा जाये तो उच्चारण गत न्याय होना कठिन है। परम्परागत शब्दों का लेखन अभी चला आ रहा है चाहे इनका उच्चारण बदल गया हो, जैसे ऋचा, ऋग्वेद, ऋषभ ऋषि लिखा जाता है, परन्तु रिचा, रिग्वेद, रिशम, रिशम, या रिखी बोला जाता है। अंग्रेजी के सात वर्ण वाले यू through को चार वर्ण thru में लिखने का यत्न किया गया है और परम्परागत शैली में इसे शनैः शनैः अपनाया जा रहा है। सर्वत; रूप विचार कर हिमाचली बोलियों के मध्यवर्ती अ का व्यवहार वर्तनी में संस्कृति, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं की वर्तनी के अनुरूप करना अभीष्ट होगा, अन्यथा उप्मा, चल्ता, मर्ता, लग्ता आदि रूद उपमा, चलता, मरता, लगता के स्थान पर खटकेंगे। शर्त, वर्त, गर्त आदि में शरत, बरत, गरत अनुकूल नहीं होगा।

२. आदि स्थिति

एकाक्षरी या द्वयक्षरी में अ उदासीन सुनायी देता है। यथा :—अग्ग, 'आग' अम्ब 'आम', अज्ज 'आज' अक्क 'आक' अद्ध 'आध', अल्ल, अर्थ।

प्रत्यय के संयोग में अ की श्रुति अल्प हो जाती है। —
अग्गी, अम्बी, अज्का 'आज का', अक्का, अड़ी, अद्धा, अद्धीं।
संयुक्त व्यंजन वाले द्वितीय अक्षर से पूर्व अ कस कर बोला जाता है :—
अच्छत, अम्बर अक्कड़, अट्टण, अक्खर, अच्छर।
अर्थ भेद को दृष्टिगत रखते हुए वक्ता अ पर अधिक बल देता है;
अमर, अटल, असर, अतर 'इत्र', असोक।

अन्यथा प्रवृति के कारण आदि अ का लोप होने से अर्थ का अनर्थ हो सकता है यथा मर, टल, सर, तर, सोक।

आदि स्थिति में अनुनासिकता पूर्ण अ इस प्रकार है :—
अंसु, अंस, अंसी।
आदि स्थिति में अ के साथ अनुनासिकता और नासिक वर्ण का भी लोप हो जाता है :—

गारू 'अंगार', ग्रेज, 'अंग्रेज' ग्रेंज्जी 'अंगरेजी', गूट्ठा 'अंगूठा', गूट्ठी 'अंगूठी' 'गीट्ठी 'अंगीठी', गोच्छा 'अंगोछा'
गणना में आदि स्थिति में अ इस प्रकार है :—

अट्ठ 'आठ', अट्ठी, अट्ठी, अट्ठें 'अष्टमी', अठुआ 'अष्टम', अस्सी ।

बलाघात की स्थिति में अ का लोप हो जाता है :—

ठारा 'अठारह', ठारुआं 'अठारहवां', ठारा 'अठारह', ठाई 'अट्ठाईस', ठानूए 'अट्ठानवें', ठान्नी 'अठन्नी ठत्ती 'अड़तीस', ठत्तर 'अठहत्तर', में आरम्भ में अलोप होगा।

इस प्रकार आदि स्थिति में अ का व्यवहार अल्प है, परन्तु अर्थ का अनर्थ अथवा विपरीतार्थ होने से कतिपय शब्दों के आरम्भ में अ सुरक्षित रहता है। यदि अ का लोप कर दिया जाये तो विपरीतार्थ हो जाता है :—

शब्द	अ-लोप के कारण अर्थ
असुर	सुर 'देवता'
असोक	सोक 'शोक'
अन्या	न्या 'न्याय'
असुद्व	सुद्ध 'शूद्र'
अमर, अमरी	मर, मरी
अरब, अरबी	रब, रबी
अकबर	कबर
असाम	साम
अरूण	रूण
असनी 'अश्विनी'	सती 'शनि'
अच्छर, अच्छरी	छर, छरीं
असुम	सुम

३. मध्य स्थिति :—

पूर्वोक्त स्थिति में कई भाषाओं में मध्यवर्ती अ श्रुतिगम्य नहीं है, परन्तु परम्परा की सुरक्षा के लिए अ का व्यवहार लिपि में है यथा— करदा, चलदा, सुणदा आदि।

द्वित्व अवस्था में अ का आगमन होता है :— पुत्र सूत्र का उच्चारण पुत्तर, सूत्तर होगा।

प्रत्यय के संयोग में अ का उच्चारण नहीं होगा : पुत्रो, पुत्री, सूत्रां, सूत्री, दीर्घसूत्री में दीर्घ-सूत्तरी उच्चारण मान्य नहीं है

मन्द उच्चारण में करम, धरम, सरम, चिलम, मरम में मध्यवर्ती अ श्रुतिगम्य होगा परन्तु यदि प्रत्यय का संयोग होगा तो संयुक्त व्यंजन सुनायी देगा :-

कर्मा, कर्मी, धर्मी, सर्मा, चिल्मी, मर्मी उच्चारण होगा मरमी नहीं।

४. ह आगम :

विशेष बल देने पर अ की आदि स्थिति में ह का आगमन होता है : हाख 'आंख', होर

'ग्रौर', होरती 'ग्रन्यत्र' होरसी 'ग्रन्य' होच्छा 'ग्रोछा', हन्दर 'ग्रन्दर' हागू, ग्रागू, ग्रागे' हंजीर, 'ग्रंजीर' हरहर 'ग्ररहर' हरड़पोपेप, 'ग्ररड़पोपो'।

५. **स्वर परिवर्तन :**

१. उ में परिवर्तन :—उंजल, 'ग्रंजलि' उंगल 'ग्रंगुलि'।

२. **ग्रो में परिवर्तन** : कुलुई, बघाटी, सिरमौरी तथा ग्रासपास की बोलियों में ग्र का परिवर्तन ग्रो, ग्रौ ग्रौर इन दोनों के उच्चारण की मध्य स्थिति में हो जाता है :—

पौर्जा 'प्रजा', कौन्या 'कन्या' खौबर 'खबर'। मत का उच्चारण मौत सुनने से मृत्यु का सन्देह हो जाता है। मत कर के स्थान पर मौन कौर सुनना पड़ता है।

३ **ए में परिवर्तन** : - मध्य ग्रवस्था में नासिक्य संयोग से पूर्व ग्र का परिवर्तन ऐ में पाया जाता है :-

जैन्त्र 'यन्त्र', मैन्त्र 'मन्त्र', तैन्त्र 'तन्त्र', सैंख शंख', कैंठ 'कण्ठ' बैंस 'वंश', लैंका 'लंका' जैन्त 'जन्तु' सैंसा 'संशय', पैंच 'पंच' पैंची 'पची'।

ग्रंग्रेजी के शब्द ट्रंक को ट्रैंक, ऋंट को ऋैण्ट, पंक्चर को पैंक्चर, सन्तरी को सैन्तरी बोला जाता है ग्रौर ग्रंग्रेजी वालों से संस्कृत को सैंस्कृत डल, को डैल सुना जाता है।

४. **ग्र में स्वर परिवर्तन** :—प्रेरणार्थमक रूप रचना में स्वर का परिवर्तन ग्र में हो जाता है :-

	मूल	प्रेरणार्थक
ई—ग्र	चीर	चरा, चराणा
	पीड़	पड़ा, पड़ाणा
	मीथ	मथ, मथाणा
इ—ग्र	लिख	लखा, लखाणा
	सिक्ख	सखा, सखाणा
	चिण	चणा, चणाणा
ए—ग्र	खेद	खदा, खदाणा
	छेक	छका, छकाणा
	सेक	सका, सकाणा
ऐ—ग्र	फैंक	फंका, फंकाणा
	पैह्न	पन्हा, पन्हाणा
	बैठ	बठा, बठाणा
ग्रो—ग्र	सोत	सता, सताणा
	तोप	तपा, तपाणा
	जोत	जता, जताणा
ग्रौ—ग्र	दौड़	दड़ा, दड़ाणा

ऊ – अ	पूर	परा, पराणा
	पूज	पूजा, पजाणा
	चूर	चरा, चराणा
उ – अ	चुक	चका, चकाणा
	सुट	सटा, सटाणा
	पुण	पणा, पणाणा
आ...अ	जाग	जगा, जगाणा
	मार	मरा, मराणा
	ताल	तला, तलाणा

शब्द रचना में यदि बलाघात प्रत्यय पर हो तो आदि स्थिति में स्वर परिवर्तन अ में, हो जाता है :—

आ—अ	बाग	बगीच्चा
	साधे	सधंगी
	ठाक	ठकाई
इ—अ	भिक्ख	भखारी
	मिट्ठ	मठास
	लिख	लखारी
ई—अ	गीत	गतारन
	चीर	चराई, चरौढा
	मीड़	मड़ाक्का
उ—अ	दुध	दधून्नू
	भुन	भनाई
	लिप	लपाई
ऊ—अ	पूज	पजारी
	सूत्र	सत्राई
	जूत	जताई
ए—अ	सेक	सकाई
	तेल	तलाई
	जेठ	जठाणी
ऐ—अ	बैंद	बदंगी
	सैल	सलान्नी
	जै	जकारा
ओ—अ	गोल	गलेल

	मोट	मटाप्पा
	तोड़	तड़ाक्का, तड़ाई
औ—अ	कौड़ा	कड़ाई, कड़ाट
	चौड़ा	चड़ाई
	दौड़	दड़ाई

६. **प्रासंगिक अर्थ** :—आदि स्थिति में अ का लोप होने से प्रसंग वश अर्थ ग्राह्य होता है :-

शब्द	प्रासंगिक अर्थ
गस्त	अगस्तमुनि, अगस्तमास, गश्त
नाज	अनाज़, नखरा
नार	नारी, अनार
नेक	अनेक, भला
मीर	अमीर, खेल में प्रथम पारी
जीब	जीव, अजीब

७. **अ लोप के साथ अन्य परिवर्तन** :—आदि स्थिति में अ के लोप के साथ विचित्र रूप रचना हो जाती है :—अमावस्या का उच्चारण मस्या, उआंस, औंस, एआंस स्थान और वक्ता के भेद से मिलता है। इसी प्रकार निम्नलिखित रूप दर्शन है :-

खोड़	अखरोट, अक्षोट (सं)
हाड़, हाड़ी	आषाठ, आषाढी
सूंज	अश्विन, असूज, अस्सू
हेड़	अहेर, आखेट
ल्हकार ल्हकारा	अहलकार
जुआणे	अजवाइन

८. **वर्तनी विचार** :—

१. सूक्ष्म अध्ययन की दृष्टि से अ के विविध रूप हैं। आदि स्थिति में अ का उच्चारण जिस रूप में है उसीं रूप में लिखना चाहिए जैसा, कि अन्य प्रान्तीय भाषाओं में लिखा जाता है। शुद्ध उच्चारण स्नान और स्तुति है, परन्तु व्यवहार में अस्नान और अस्तुति है, चाहे अर्थ भेद क्यों न हो। इससे भाषा के प्रवाह में उत्कर्ष और अपकर्ष का ज्ञान प्रतीत होगा। शब्दकोश में समानान्तर रूप दर्शन आवश्यक है। बहु प्रचलित रूप का मान होना चाहिए तथा अन्य रूप वैकल्पिक स्थिति में ग्राह्य होना चाहिए यथा:—

मानक	वैकल्पिक रूप
अज्ज	औज आज
अड्डा	औड्डा आड्डा

अर्थ   औंर्थ अरथ

अस्पताल   औस्पताल हस्पताल अस्पताल हास्पिटल

२. जहां अर्थ का अनर्थ प्रतीत होता हो वहां आदि स्थिति में अ का व्यवहार अनिवार्य है :—

अमर, असुर, असोक, असनी, असुम, असुद्धि, असुद्ध, अकबर, अरब ।

३ जहां द्वितीय अक्षर पर बलाघात होने से आदि स्थिति में अ का लोप हो गया हो वहां जो प्रचलित रूप है उसका व्यवहार होना चाहिए :—

नर्थ (अनर्थ), नार (अनार), ल्मारी (अलमारी), खबार (अखबार), वस्था (अवस्था), लग (अलग), नादर, (अनादर), नोक्खा, (अनोखा), पमान (अपमान), पराध (अपराध), बसोस (अफसोस) फीम (अफीम), मरूद (अमरूद), धूरा (अधूरा),

VI. संख्यावाचक शब्दों में जहां आदि स्थिति में अ का लोप हो गया है, वहां लोकयज्ञ के अनुसार व्यवहार करना चाहिए :—

ठारा 'अठारह', ढाई 'अढ़ाई', ठत्ती 'अड़तीस', ठानूंए 'अठानवें' ठास्सी 'अठासी', ठत्तर 'अठहत्तर', ठान्नी 'अठन्नी', घेल्ली 'अघेली', घेल्ला 'अधेला' ।

V. दिन, वार, मास के नाम में जो लोक व्यवहार है, वह अपनाना चाहिए । संस्कृत मूल आश्विन हिन्दी में असूज-असोज-और पहाड़ी में सूज, सौज, शौज बोला जाता है । इसी प्रकार प्रैल 'अप्रैल', गस्त 'अगस्त' क्तूबर 'अक्तूबर' रूप आकार रहित व्यवहार में हैं ।

VI. संकोचवश नामकरण संस्कार जैसा हो वैसा अपनाना चाहिए :—

बाच्छो 'अविनाश', अनु 'अनिल', अच्छरी 'अच्छर' अक्षर अम्रतो 'अमृत' ।

शिक्षित वर्ग में शुद्ध नाम लेने, लिखने और सुनने की प्रवृत्ति बढ़ रही है उसे अपना लेना चाहिए :—

अमित, अंगद, अंजना, अंशु, अंसू, अरुण, अवतार, अमर, अमरावती, अर्जुन ।

VII. आकार के साथ नासिक्य अथवा अनुनासिकता का जहां लोप हो गया है वहां अकार रहित शब्द का प्रयोग ग्राह्य है : –

गारू 'अंगार', ग्रेज, ग्रेज्जी, 'अग्रेज, अंग्रेजी', गूट्ठा 'अंगूठा', गूट्ठी 'अंगूठी' ।

VIII. आदि स्थिति में जहां का विकार ह में हो गया है वहां वह रूप विशेष ग्रहण कर लेना चाहिए :—

हाख 'आंख', हरहर 'अरहर', हन्दर 'अन्दर' ।

IX यदि अ में स्वर विकार हो गया हो तो उन रूपों को अपनाना चाहिए । प्रेरणार्थक रूपों में हिन्दी में लिखना से लिखवाना होता है, 'परन्तु पहाड़ी में लिखणा से लखाणा में इ का परिवर्तन अ में होता है । इसी प्रकार चीरना से चराणा, खेदणा से खदाणा, फैंकणा से फंकाणा, तोपणा से से तपाणा, दौडणा से दड़ाणा, पूजणा से पजाणा, चुकणा से चकाणा, जागणा से जगाणा रूपों में मूलधातु के स्वरों के स्थान पर प्रचालित अ का व्यवहार अपनाना चाहिए ।

X. सिरमौरी, कुलुई, बघाटी तथा शिमला के आसपास की बोलियों में जहां अ के स्थान पर औ का प्रयोग है वहां इन बोलियों के प्रयोग में वहां इन बोलियों के प्रसंग में औ का व्यवहार होना चाहिए :—

आदि स्थिति

औग, अग्ग, अग्नि
औज, अज्ज, आज
औकल, अक्कल, अक्ल
औट्टी अट्टी, आटी
औरहौर, हरहर, अरहर

मध्य स्थिति

गौर्ज, गर्ज	मौन्तर, मन्त्र
कौडछी, कढछी	मौंगल, मंगल
जौल, जल	सौबौक, सबक
पौशु, पशु	चौकला, चकला
	कौही, कही, कसो

अन्त स्थिति

घाटौ, घाट	रोशौ, रौश्टौ, रस्सी
शैलौ, शीत	लौहौ, लोहा
पाखौ, पक्ख, पंख	माणछौं, मानस, माहणू
बिस्तरौ, बिस्तर	बशरौं बस्राम, विश्राम
बोझों, बोझ	माशौ माशा
माखौ, मक्ख, मक्खी	मौजौ मजा

"कुलुई में आजकल ओं को प्राय: 'औ' रूप में लिखा जा रहा है, क्योंकि कुलुई में मूल 'औ' का रुप 'अउ' में परिणत होता नज़र आ रहा है। मूलत: 'औ' का स्थान 'ओं' से कुछ ऊपर है। औ में ओष्ठ ओं से अधिक गोलाई की ओर झुकते हैं। औ का अधिकत: प्रयोग संध्यक्षर के रुप में होता है। तब इसका ओं से भेद स्पष्ट प्रकट होता है, जैसे-मोंत (मत) परन्तु मौत (मत्यु), ओंखें (यहां) परन्तु औखें (कठिनता से), ओंज् (आज) परन्तु औज् (अपवित्रता) आदि।"

इस दृष्टि से यदि उप चिन्ह का व्यवहार किया जाये तो मूल रुप की पहिचान हो सकती है। यदि उपचिन्ह का पालन लेखन तथा मुद्रण में नियमानुसार किया जाये तो भाषा का सम्यक् रुप दर्शन होगा। यदि कहीं प्रयोग और कहीं उदासीनता दिखाई जाएगी तो अनेक रूपता से विरुपता आ जायेगी।

उपसंहार

I. हिमाचली बोलियों में शब्द की आदि मध्य और अन्त की स्थिति में प्रबल मन्द और उदासीन अकार की अनेक रूपता है—हच्छा, अच्छा, औच्छा, ओच्छौ, एच्छी इच्छागत अनेक भेद हैं ।

II. प्रस्तुत लेख में आकार को ध्वनि और वर्तनी का विचार विशेष व्यवहृत बोलियों में प्रकाशित लेखों के आधार पर तथा सम्पर्क सूत्र में विशेष व्यवहृत ध्वनि के आधार पर किया गया है । अवग्रह के साथ कहीं अनुग्रह की प्रतीति स्वाभाविक है ।

III. यदि हिमाचली की विविध बोलियों में व्यवहृत अकार का अनुसन्धान और प्रयोग शब्दों की आदि मध्य और अन्त की स्थिति में एकल तथा वाक्य रचना के आधार पर क्षेत्रीय बहुश्रुत शोधकर्ताओं द्वारा अधिकारी के रुप में अपनी अपनी बोली में प्रस्तुत किया जाये तो अकार की बहुरुपता के दर्शन का आनन्द सुलभ हो सकता है और श्रवण का आनन्द एक विशाल लेखक गोष्ठी में साकार हो सकता है ।

IV. संगृहीत सामग्री के आधार पर अनेक रूपता में एकरूपता का निश्चय विचार गोष्ठी के आयोजन से होगा । अन्यथा अनेक शोधकर्ताओं की गवेषणा एक मात्र एषणा बन कर पंजीकृत बनी रहेगी ।

V. योजनाबद्ध रुप में सममाशांश सीमा रेखा का निश्चय कर यदि क्षेत्रीय अनुसन्धान किया जाये तो अकार का परमब्रह्म स्वरूप आकार दर्शन ऐतिहासिक, और तुलनात्मक पद्धति में शब्दब्रह्म की परम्परा में अनुराग और अनुकरणीय प्रयास होगा । जैसे भगवान् ने गीता में कहा है, आकार के वर्णन में विविध विशाल जनपद परम्परा के आकार का दर्शन होगा ।

अक्षराणामकारोऽस्मि (श्रीमद्भगवद्गीता १०,३३)

साधु आश्रम

होश्यारपुर १४६०२१

नादौन नगरी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

● डा० ब्रह्मदत्त शर्मा

नादौन नगरी हमीरपुर के उत्तर में २८ किलोमीटर की दूरी पर व्यास नदी के बाएं किनारे पर स्थित है। इसके उत्तर में हिमाच्छादित धौलाधार घाटी हिमकिरीट पहने खड़ी है तथा दक्षिण पूर्व में हरियाली और झाड़ियों से ढकी विस्तृत वनस्थली फैली हुई है। बीच में असंख्य नाले हैं, जो वर्षा ऋतु में इस घाटी का पानी बहाकर व्यास नदी म ले जाते हैं। यह नगरी जो अब हमीरपुर जिला की उपतहसील है, किसी जमाने में यह कांगड़ा के राजाओं का निवास स्थान हुआ करता था। महाराजा संसार चन्द के राज्य में यहां बड़ी रौनक थी। लुहार, बढ़ई, दरीकालीन बुनने वाले दस्तकार, कई गायक और कथाकार राजाश्रय में रहते थे। साथ ही दो सौ के लगभग वेश्याएं भी रहती थीं। जो कोई उनके जाल में फंस जाता था, निकल नहीं सकता था। उस समय नादौन नगरी में ऐसी चहल-पहल थी कि जो यहां एक बार आ जाता, उसे फिर लौटने की इच्छा नहीं होती थी। उन दिनों यह कहावत आम प्रचलित थी :—

"जाएगा नादौन तो आयेगा कौन,
रखेगी किस्मत तो मारेगा कौन"

नादौन की हवा दूध की तासीर रखती है। इसीलिए किसी शायर ने नादौन के सम्बन्ध में यह उचित ही कहा है

"क्या सुनाएं क्या बताएं,
कौन जाने कौन समझे,
दूध की तासीर रखती है,
हवा नादौन की।

यहां के देवर-भाभी विषयक लोकगीतों में भी नादौन की ठण्डी और सुन्दर बावलियों का उल्लेख हुआ है :—

"कूंजा जाई रहिआं नादौन,

डुग्गे ठंडे बांके नौरण,
इक घुट पी ओ लैणा,
दिओरा ओ मेरिया लोभिया"।

प्राचीन इतिहास :—इस नगरी का इतिहास अति प्राचीन है। कांगड़े की वर्ण-व्यवस्था के अनुसार महाभारत कालीन राजा सुशर्मचन्द की रानी सम्राट दुर्योधन की बहन थीं। सम्राट का राजदूत पं. श्री खण्ड गौड़ कांगड़ा दरबार में रहता था। उसने अपने बाहुबल तथा बुद्धि कौशल से नादौन एवं कुटलैहड़ क्षेत्र के राक्षसतुल्य डाकुओं को निर्मूल किया था। पुरस्कार स्वरूप वह कुटलैहड़ राजवंश का संस्थापक बना। उसने अपना ब्राह्मणत्व त्यागकर क्षत्रिय वर्ण अपनाया। एक जनश्रुति के अनुसार उस समय नादौन में नन्दा राक्षस रहता था जिसके भय से उस समय यहां कोई भी व्यक्ति नहीं रहता था। हो सकता है कि यह वही राक्षस था जिसे श्री खण्ड गौड़ ने मारा था। इस नगरी को नन्दा नगरी भी कहते हैं। संभवतः इस नाम का प्रचलन उसी राक्षस के नाम पर ख्याल हो गया हो।

एक जनश्रुति के अनुसार लगभग 800 ई० में चन्देरी के राजा हरिचन्द ने अपनी सेना व अपने चार पुत्रों के साथ उत्तरी भारत की ओर प्रस्थान किया। उसके बड़े लडके ने अपने पिता की अनुपस्थिति मे चन्देरी के राज्य का कार्यभार सभाला। राजा हरिचन्द ने शिवालिक की पहाड़ियों के समीप पहुंचने पर होशियारपुर के चांदबाड़ी पर विजय प्राप्त कर वहां पर एक दुर्ग का निर्माण किया। वहां पर कुछ समय आराम करने के पश्चात् उसने ज्वालामुखी में भगवती के दर्शन करने का निर्णय लिया। ज्वालामुखी में देवी के दर्शन करने के पश्चात् उसने नादौन में तत्कालीन राजा से मिलने का फैसला किया। मेजबान राजा ने अपनी राजधानी नादौन के 'अम्बतर राज-महल' में नवागन्तुक अतिथियों का हार्दिक अभिनन्दन किया। उसने अपने माननीय अतिथियों के मनोरंजनार्थ नादौन के 'अम्बतर चौगान' में एक प्रतियोगिता का आयोजन भी किया। इस प्रतियोगिता का क्रमशः विवरण इस प्रकार से हैं "यात्रा पर आए हुए राजा हरि चन्द और उसके चारों पुत्र कांगड़ा के राजा से नादौन में मिले और दोनों राजाओं के बीच एक मैत्रीपूर्ण प्रतियोगिता हुई, जिसमें चन्देरी के राजा की विजय हुई। अगले दिन स्थानीय राजा ने तम्बू की कीलियां गाड़ने के मुकाबले का आयोजन किया और साथ ही यह घोषणा कर दी कि वह अपनी पुत्री की शादी उस राजकुमार से कर देगा जो तम्बू की विशेष कीली को उखाड़ दे। वास्तव में यह विशेष कीली एक पेड़ की जड़ थी। चन्देरी के राजा के छोटे पुत्र सुमीरचन्द ने इस प्रतियोगिता में भाग लिया और दुल्हन को अपने बड़े भाई बीरचन्द को देने का निर्णय लिया। चन्देरी के राजकुमार के लिए वह दिन अशुभ था क्योंकि उस दिन भयंकर तूफान आया और वह अपने घोड़े पर नियन्त्रण खो बैठा और मारा गया। राजा हरिचन्द को नादौन के राजा की कुचाल का पता लग गया और इसी कारण दोनों में भयंकर लड़ाई हुई जिसमें नादौन के राजा की पराजय हुई। इस लड़ाई में दोनों ओर

के राजा मारे गए । हरिचन्द के बड़े राजकुमार ने चन्देरी सेना का नेतृत्व किया और वह सतलुज घाटी की ओर लौट गया, वहां जाकर उसने स्थानीय राजा को पराजीत कर कहलूर राज्य की नींव डाली ।

नादौन राजधानी के रुप में:—

सन् १६२० में मुगल सम्राट जहांगीर ने नूरपुर के राजा जगत सिंह के सहयोग से कांगड़ा के राजा त्रिलोक चन्द से हरा कर कांगड़े के किले पर अपना अधिकार जमा लिया इस शहर की रौनक और बढ़ गयी और इस कसबे की चतुर्मुखी प्रगति होने लगी । यह भी कहा जाता है कि किसी समय बिलासपुर के राजा दीपचन्द ने औरंगजेब के अधीन मुगल सेना का साथ दिया था, जिसके परिणामस्वरुप उसने मुगल दरबार में प्रभूत ख्याति अर्जित कर ली थी । मुगल सम्राट ने उसकी वफादारी से प्रभावित होकर उसे पांच लाख रुपए तथा सनद प्रदान की थी और लगभग बीस राज्यों का शासन उसके सुपुर्द सौंप दिया था । जब वह दिल्ली से वापस आ रहा था तो रास्ते में कांगड़ा के राजा चन्द्रभान ने १६५६ में उसका नादौन में भव्य स्वागत किया । उसे बिलासपुर के राजा दीप चन्द की मुगल दरबार में बढ़ती लोकप्रियता अखरने लगी थी । इसी लिए नादौन में दीप चन्द को दिए गए रात्रि-भोज में राजा चन्द्रभान ने विष मिला दिया जिसके परिणाम-स्वरुप दीपचन्द की मृत्यु हो गयी । इस प्रकार इस घटना के पश्चात् दोनों पड़ोसी राज्यों के राजा एक दूसरे के कट्टर शत्रु बन गए ।

नादौन नगरी के साथ महाराजा संसारचन्द का भी घनिष्ट सम्बन्ध रहा है । हचीसन एवं वोगल के शब्दों में कांगड़ा नरेश महाराजा संसारचन्द एक अद्भुत, पुरुष थे और उनका नाम आज भी कांगड़ा जिला के घर-घर में लिया जाता है । उसके शासनकाल में कटोचों का यह प्राचीन राज्य शक्ति तथा कीर्ति के उच्चतम शिखर पर पहुंच गया था । बीस वर्षो तक वह पहाड़ी प्रदेश के प्रधान बने रहे । कहते हैं कि एक बार कोई ब्राह्मण उनके पास आया और धन की याचना की जिसकी राजा पूर्ति न कर सके । निराश होकर ब्राह्मण ने अपनी छाती में कटार मार कर आत्म हत्या कर ली । उसके बाद वह जब भी खाना खाने बैठते, उनका भोजन रक्त से भर उठता । अन्त में विवश होकर महाराजा संसार चन्द सुजानपुर टीहरा को छोड़ कर नादौन में आ गए जो किसी जमाने में कांगड़ा राज्य के अन्तर्गत एक छोटे से राज्य की राजधानी थी। संसार चन्द ने अपने जीवन के प्रारम्भिक दिन भी यहीं पर व्यतीत किए थे । जून १८०६ में जब अमर सिंह आया और राजा संसार चन्द की ओर से निगाही चन्द के नेतृत्व में फौज लड़ने को आई तो निगाही चन्द उसमें मारा गया और उसकी फौज भाग खड़ी हुई । निरन्तर आगे बढ़ता हुई गोरखा सेना नादौन के किनारे पहुंच गई । राजा संसार चन्द नादौन से निकल कर कांगड़ा के किले में चले गए । नादौन में राजा संसार चन्द ने मण्डी के राजा ईश्वरीयसेन को कैद कर रखा था । अमर सिंह थापा की सेना ने उसे मुक्त किया । ईश्वरीयसेन का उल्लेख पेलग्रिफिन्स ने अपनी पुस्तक 'पंजाब के राजे' में इस प्रकार से किया है—सन् १७७६ में मण्डी के राजा का देहान्त हो गया । उस समय उसके लड़के ईश्वरीसेन की आयु लगभग पांच वर्ष की थी । संसार चन्द ने मौका अच्छा देखकर मण्डी

पर हमला कर दिया तथा ईश्वरीसेन को बन्दी बना कर बारह वर्षों तक नादौन में जेलखाने में कैद रखा"। अमर सिंह थापा ने उसे जेल से रिहा करवाया। इसका परिणाम यह निकला कि जब कहलूर के राजा के बुलाने पर गोरखा अमर सिंह थापा ने कोट कांगड़ा पर चढ़ाई की तो अन्य राजाओं के साथ-साथ ईश्वरी सेन भी उस से जा मिला।

गोरखों के आक्रमण से नादौन में लूटमार एवं विनाश लीला

अमर सिंह थापा की सेना ने चार वर्ष तक कांगड़े के किले पर घेरा डाले रखा। इन चार वर्षो में उसकी सेना ने उस नगर को क्षतिग्रस्त कर दिया। उनके उत्पीड़न से लोग घर छोड़ कर अन्यत्र भाग गए, खेत बेआबाद हो गए। शहरो में दिन दिहाड़े जंगली पशु विचरने लगे। उनकी दशा उस उजड़ी हुई अयोध्या जैसी हो गयी जिसका वर्णन महाकवि कालिदास ने इस प्रकार किया निशाकाल में पहले जिन रास्तो पर चमकीले नूपुरों वाली अभिसारिकाए चला करती थी, अब है–उन पर सियारिनें विचरती हैं, जिनके मुख से चिल्लाते समय चिंगारियां बहिर्गत होती हैं, अर्थात् स्वर्णनूपुरों के स्थान पर अब उन के मुख से चिंगारियां चमचमाती हैं। बार्नस ने कांगड़ा और नादौन की इस दुरावस्था का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "इन अभागे दिनों की स्मृति पहाड़ों के इतिहास में एक सीमा चिन्ह के समान है देश का हिस्सा तो गोरखों के अधिकार में था, कुछ जिसमें कांगड़े का दुर्ग तथा अन्य कुछ किले शामिल थे वे कटोच राजा के अधीन थे। एक दल दूसरे दल के अधिकारगत इलाके पर इस लिए लूट-पाट मचाता रहा कि, वह उसके साधनों को कमजोर कर दे। जनता आंक्रांत एव किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अड़ोस-पड़ोस के राज्यों में भाग गयी कुछ चम्बा में, तो कुछ जालन्धर (दोआबा) में। तीन वर्षो तक अराजकता की स्थिति बनी रही। कांगड़ा की इस उर्वर घाटी में फसल उत्पन्न नहीं हुई। शहरों में घास उग आई तथा नादौन की सड़कों पर सिहनियों के बच्चे पैदा होने लगे।

"मूरक्राफ्ट" एक अन्य अंग्रेज विद्वान ने भी अपनी पुस्तक में नादौन नगरी का वर्णन किया है। उन्होंने इसके सम्बन्ध में लिखा है, कि नादौन एक व्यापारिक केन्द्र था। यह स्थान पहले समृद्ध राजाओं के अधीन एक प्रमुख स्थान था। काश्मीर और हिन्दुस्तान के बीच आने-जाने वाले व्यापारियों का यह मनचाहा पड़ाव था। व्यापार गोसाईं के हाथ में था। आज भी उनकी जाति का एक परिवार नादौन में रहता है। पंजाब के प्रसिद्ध विद्वान मुहम्मद लतीफ ने अपने शोध-प्रबन्ध 'पंजाब का इतिहास' में जो एक शती पूर्व लिखा है, में लिखा है कि "नादौन एक व्यापारिक केन्द्र था। मैदानों में लूटमार के भय से व्यापारी अपना माल पहाड़ी मार्ग द्वारा दिल्ली ले जाया करते थे। नादौन में उनकी विश्राम स्थली हुआ करती थी। व्यापार गोसाईंयों के हाथ में था। उस समय यहां का राजा माल पर भारी कर वसूल करता था। कर के रूप में वसूल होने वाली वार्षिक राशि २७००० रुपये थी। गोरखों द्वारा अधिकार किए जाने पर नादौन नगरी की भारी क्षति हुई। "मूरक्राफ्ट" इस सम्बन्ध में आगे लिखता है कि "गोरखों के अत्याचारों से लोग बहुत दुखी थे। वे नादौन से भाग गए। गोरखों के आगमन के पश्चात यहां का व्यापार खत्म

हो गया यहां का बाजार जो पहले व्यापारियों से भरा रहता था, अब वहां बिल्कुल थोड़े बहुत फकीर यात्री घूमते रहते हैं। दूकानदार भमाईयां भरते तथा सोते हुए देखे जाते हैं।"

नादौन का युद्ध : १६८७ ई०

भगानी का युद्ध समाप्त होने पर गुरुगोबिंद सिंह जी पांवटा से वापिस आनन्दपुर लौट आए गुरु जी का प्रभाव इतना बढ़ गया कि उनके शत्रु पहाड़ी शासकों के नेता भीम चन्द ने गुरु जी से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने आरम्भ कर दिए। गुरुजी से मित्रता पूर्ण स्थापित करने के बाद पहाड़ी शासकों ने सरहिन्द के सूबेदार को कर देना बन्द कर दिया। इस पर मुगल बादशाह औरंगजेब का सेनापति मियां खांजम्मू गया और उसने वहां से अलिफ खां को पहाड़ी से कर उगाहने के लिए भेज दिया। पहाड़ी शासकों में से कांगड़ा के शासक कृपाल ने कर दे दिया और "अलिफ खां" को बताया कि यदि वह बिलासपुर के शासक से कर लेगा तो शेष सब शासक स्वयं कर देंगे। इस पर शाही सेनाओं ने बिलासपुर के शासक के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। भीम चन्द ने गुरुगोबिन्द से सहायता मांगी। इस युद्ध में गुरु जी ने दीवान मोहरी चन्द और दयाराम के अधीन 500 सैनिक भेजे। यह युद्ध नादौन में बावनाला नामक स्थान पर लड़ा गया जिसका वर्णन गुरु गोबिन्द ने अपना रचना विचित्र नाटक और सेनापति ने अपनी रचना 'गुरु शोभा' में किया है।

बहुत काल इह भांति बितायो, मियां खान जम्मू आयो।
अलफ खान नादौन पठावा, भीमचन्द सिह बैर बढ़ावा।
जुध काज नृप हमैं बुलायो, आप तवन की ओर सिधायो।
तिन काठ गढ़ नवरस बांधो, तीर तुफंग नरेसन साधो।

सन् १६८७ में नादौन के समीप बावनाला में दोनों पक्षों की ओर से भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध में लड़ रहे वीर लोग ऐसे लग रहे थे मानों वे होली खेल रहे हो। भूमि पर गिरे हुए वीर बर्छियों और भालों से बिन्ध पड़े थे। उनके कपड़े खून से ऐसे रंगे थे मानों होली खेली हो। युद्ध में पहाड़ी राजाओं और गुरुगोबिन्द सिंह की सम्मिलित शक्ति के सम्मुख बादशाही सेना को पराजित होना पड़ा। मुगल सेना का सेनापति लड़ाई के मैदान से भाग लिया। भागते-भागते वह अपना खाना भी छोड़ गया—"भजो अलफ खान न खाना संभारो। भजे और वीर न धीर विचारो"।

कवि सेनापति ने भी अपनी रचना 'गुरु शोभा' में नादौन की लड़ाई का वर्णन बड़ी मार्मिक शैली में प्रस्तुत किया है :

राजन के हित कारने कीउ युद्ध इम जान।
कथा जुद्ध नंदवण को बर्नत ताहि बिग्रान।।
आण नादवण में रहिउ कीनी घूम अपार।
भीमचन्द कहलूरिया हुतो राव इक जान।।
तिहसो तिहकी बहि बनीं रचिउ जुध घमसान।।

यह कहा जाता है कि गुरुगोबिन्द सिंह इस लड़ाई के पश्चात् नादौन में आठ दिन रहे थे और जहां वे ठहरे थे: वहां पर दिल्ली के ठेकेदार ने १३ जनवरी १६२६ में गुरु की ऐतिहासिक लड़ाई की स्मृति में गुरुद्वारे का निर्माण किया था। कुछ लोगों का कहना है कि इस गुरुद्वारे का निर्माण यहां के राजा अमरचन्द ने करवाया था। उसने नादौन में 'जयश्री देवी, के मन्दिर का निर्माण भी करवाया था जिसका उल्लेख जालन्धर पीठ रचना में भी मिलता है। एक बार नाभा के राजा नादौन में आए और उन्होंने लगभग तीन कीले जमीन नादौन के राजा से खरीद कर गुरुद्वारे के नाम कर दी और साठ रुपये वार्षिक खर्च भी देना मान लिया।

रणजीत सिंह का आगमन :—

सन् 1926 में होली के अवसर पर जीन्द के राजा संगत सिंह लाहौर दरबार में रणजीत सिंह के दर्शनार्थ वहां गए। वहां पर उनके साथ होली खेलने के पश्चात राजा संगत सिंह ने ज्वालामुखी में भगवती के दर्शन करने की इच्छा व्यक्त की। महाराजा रणजीत सिंह भी उनके साथ ज्वालामुखी में आए। वे नादौन में राजा संसार चन्द के पुत्र अनिरुद्ध चन्द से भी मिले। अनिरुद्ध चन्द ने उनका हार्दिक स्वागत करते हुए भेंट में उन्हें बढ़िया किस्म के घोड़े भी दिये। महाराजा संसार चन्द की दो लड़कियां अविवाहित थीं। महाराजा रणजीत सिंह के दीवान जम्मू के राजा ध्यान सिंह कुलीनता हासिल करने के लिए उनमें किसी एक के साथ अपने पुत्र की शादी करना चाहते थे, और इस इरादे को उन्होंने महाराजा रणजीत सिंह के सम्मुख रखा। रणजीत सिंह के वह लाडलों में थे, महाराजा ने अनिरुद्ध चन्द को नादौन से बुला कर यह प्रस्ताव उसके सामने रखा। उसने अपनी बहनों की शादी करने का बचन दे दिया, पर महारानी (संसार चन्द की पत्नी) को यह सम्बन्ध बिल्कुल नापसन्द था। कटोचवंश की कन्या ध्यान सिंह के घर ब्याही जाए, इसे वह स्वप्न में भी न सोच सकती थी। अन्त में रणजीत सिंह ने नादौन के लिए इस सम्बन्ध के विषय में बात करने के लिए स्वयं प्रस्थान किया। अनिरुद्ध चन्द और उसकी मां को जब महाराजा रणजीत सिंह की नादौन में आने की सूचना मिली तो वह लड़कियों के साथ रातों-रात सतलुज पार करके अंग्रेजों के राज्य में चली गयी। उसने पैतृक सम्पत्ति तो खो दी, पर कटोचवंश को कालिमा न लगने दी। नादौन आने पर गद्दण रानी के पुत्र जोधवीर चन्द ने महाराजा का हार्दिक अभिनन्दन किया और और अपनी दोनों बहनों की शादी यहां के रीति रिवाज के अनुसार रणजीत सिंह से कर दी। महाराजा रणजीत सिंह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने इसके बदले में कांगड़ा राज्य का एक छोटा सा टुकड़ा उसे दे दिया। इसके अतिरिक्त रणजीत सिंह ने उसे एक लाख रुपए वाला नादौन ताल्लुका तथा राजा की उपाधि दी।

आजकल इस नगर में उपनगरपालिका है, जो इस नगरी के उद्धार में रात दिन कार्यरत है। इस शहर को सजाने संवारने तथा उत्थान के लिए कई योजनाए' हिमाचल सरकार के विचाराधीन

हैं जिन्हें अभी कार्यरूप में परिणत किया जाना है। यह पुरानी कहावत जो बार-बार कानों में गूंजती है कि जायेगा नादौन तो आयेगा कौन कहावत अब कब साकार होगी इसके बारे में कुछ कहना कठिन है। किन्तु हमें आशा रखनी चाहिए कि इस ऐतिहासिक नगरी को अपना गौरवमय स्थान एक दिन अवश्य प्राप्त होगा।

यशपाल साहित्य परिषद
अपर बाजार नादौन 177033
पो. ओ. नादौन जिला हमीरपुर (हि०प्र०)

पहाड़ी शैली के रागमाला चित्र

● इनाक्षी महाजन

राग माला चित्रों का मूल भारत के लम्बे भूतकाल में निहित है। संगीत का जन्म और विस्तार ईसा से लाखों करोड़ों वर्ष पहले हुआ। नाद से स्वर, स्वर से शब्द और शब्दों से लोक संगीत का विस्तार हुआ। लोक संगीत ने समय के साथ पूजा पद्धति में स्थान पाया और इसकी परिष्कृति होते होते शास्त्रीय संगीत का उदय हुआ। यह संगीत दैवी स्रोत से उद्भूत माना गया और इसमें गाने वालों और सुनने वालों दोनों में एक विशेष रस पैदा करने की शक्ति थी।

भारतीय ललित कलाओं की धुरी नवरस है, जिसको पाने के लिए सभी ललित कलायें सतत साधना रत हैं। यद्यपि स्थूल रूप से ललित कलाओं में भिन्नता है परन्तु रस स्तर पर एक धरातल ऐसी भी है जिस पर पहुँच कर सभी ललित कलायें तात्विक दृष्टि से अंत: सम्बन्ध और समान सिद्ध होती हैं। किसी भी कला-साधना से सर्व प्रथम भाव का सृजन होता है। तत्पश्चात भावों के समन्वय से इच्छित रस की प्राप्ति होती है। साधना, भाव और रस विभिन्न ललित कलाओं में स्थूल रूप से भिन्न, मध्य स्तर पर समन्जस्य और सूक्ष्म स्तर पर एक रूपता निर्धारित करते हैं। इस गहन मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के ज्ञान हेतु भारतीय कला मर्मज्ञों द्वारा प्राचीन काल से ही गवेषणा हो रही है। रागमाला चित्र इस गवेषण की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

संगीत मुख्यत: श्रव्य प्रभावोत्पादक है। जब कि चित्रकला दृष्य प्रभावोत्पादक हैं। संगीत द्वारा रंजकता का कारण है, इसके श्रवण से भाव और तत्पश्चात भाव अनुभूति द्वारा श्रव्य-दृश्य-जनित रस का सृजन होता है। यही रस विपरीत चित्रकला में सर्व प्रथम दृश्य भाव को पैदा करता है, और यह भाव स्वयं ही श्रव्य का सृजन करके रस को जन्म देता है। अत: राग जनित रस को चित्रकला के माध्यम से प्राप्त करने का जो प्रयास हुआ वह रागमाला चित्रों के रूप में सामने आया है। यह प्रयास विभिन्न शताब्दियों में सम्पूर्ण देश के प्राय: सभी भागों में समान रूप से हुआ। हिमाचल प्रदेश तथा साथ के पहाड़ी क्षेत्र में भी इस प्रकार के प्रयास किये गए। यह एक गौरव पूर्ण बात है। इस लेख में इन्हीं प्रयासों की चर्चा करेंगे।

धर्म प्रधान भारत देश में अनादि काल से ही कर्म क्रिया को यज्ञ का दर्जा दिया गया और

जीवन के प्रत्येक पक्ष में दैव पुरुष की ग्राराधना पर जोर दिया गया। दैव पुरुष के ग्रनादि, ग्रनन्त, ग्ररूप ग्रव्यक्त होने पर भी मनुष्य ने ग्रपनी कल्पना में उस ग्रपने जैसा, दो हाथ पैर वाला प्राणी समझ कर ही उसकी पूजा की। ऐसा विश्व के सभी देशों में समय-समय पर हुग्रा। विभिन्न धर्मों में या तो कोई पुरुष ग्राकृति ग्रौर या कोई पुस्तक उसकी प्रतीक बनी। कोई न कोई बिम्ब उस ग्रव्यक्त को व्यक्त करने के लिए बनाया गया।

शास्त्रीय संगीत का राग-रागिनियों क सूत्र मे पिरोया गया। यह कहना सत्य है कि जिसको संगीत के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है ग्रौर जिनका ज्ञान केवल सात स्वर, तीन ग्राम ग्रौर मूर्च्छंना की संख्या तक सीमित है, वे सब भी छः राग ग्रौर छत्तीस रागिनिया की संख्या का ग्रौर रागों के पुरुष ग्रौर रागिनी के स्त्री रुप के बारे में जानते हैं। यह मूर्त रूप यद्यपि ग्राम समझ के ग्रनुसार राग रगिनी की स्वर योजना, स्वर विस्तार, रस ग्रथवा रजकता की ग्रभिव्यक्ति बहुत ग्रर्थों मे करता है। परन्तु इसमें सत्य नही है। इनका कारण समझने वाले की ग्रल्पज्ञता भी हो सकता है। ग्रभिव्यक्ति के सभी साधन एक सीमा तक ही पहुंच सकते हैं शेष कार्य तो समझने वाले पर ही निर्भर होता है। जैसे बधिर व्यक्ति स्वर को नहीं समझ सकता ग्रौर ग्रन्धा व्यक्ति दृश्य की कल्पना तो कर सकता है परन्तु नेत्रों वाला की तरह उसका ग्रानन्द नहीं ले सकता इसी प्रकार बिम्ब निर्धारित करने वाले के स्तर पर ही पहुँच कर उन बिम्बों का उचित मूल्य ग्रांका जा सकता है, ग्रन्यथा नहीं। ग्रतः रागमाला चित्रों को समझने के लिए भी संगीत एवं तत्कालीन बिम्बमर्यादाएं जानना ग्रावश्यक है।

पहाड़ी शैली सामूहिक तौर पर जम्मू से लेग्रर गढ़वाल क्षेत्र तल फैली हुई विभिन्न उपत्यकाग्रों में प्रचलित शैलियों से सम्बन्धित है। महान कला 'वज्ञ कलांज-एवलिंग के ग्रनुसार सभी पहाड़ी रागचित्रमाला क्षेमकरण द्वारा स्थापित छः राग ३१ रागिनियों ग्रौर ५० पुत्रों के सूची के ग्रनुसार है। इस पद्धति के ग्रनुसार पहाड़ी शैली के 84 रागचित्रों पर ग्राधारित 6 रागमाला चित्र बनाए गए।

क्षेमकरण सोहलवीं शताब्दी में मध्य प्रदेश स्थित रीवा रियासत में राजपुरोहित थे। उन्होंने ग्रपने ग्रन्थ रागमाला में प्रत्येक राग रागिनी का स्वर रूप ग्रौर बिम्ब रूप निर्धारित किया। यद्यपि पहाड़ी चित्रकारों ने क्षेमकरण द्वारा प्रतिपादित स्वर स्वरूप ग्रौर बिम्ब रूप का ग्रनुकरण किया तथापि उन्होने राग के जनसाधारण बोध को भी ग्रपनाया है।

सर्व प्रथम बसोहली ग्रथवा कुल्लू रागमाला चित्र बनाये गये। उन्हीं को देख कर बिलासपुर, गढ़वाल ग्रौर कांगड़ा रागमाला चित्रों का विकास हुग्रा। प्रत्येक क्षेत्र में 84चित्रों पर ग्राधारित राग माला बनाई गयी। १०० से भी ग्रधिक राजस्थानी रागमाला चित्रों के मुकाबले पहाड़ी प्रदेश में केवल छः प्रकार के रागमाला चित्र उपलब्ध हैं। इन छः प्रकार की रागमालाग्रों में पूरे 84 चित्र

उपलब्ध नहीं हो सके। जिस किसी क पास व्यक्तिगत तौर पर यह बचे हुए चित्र हैं, उनके नाम पते अभी तक पता नहीं चल सके। इस विषय में अभी काफी खोज की आवश्यकता है।

कुल्लू अथवा बसोहली रागमाला के 32 चित्र बोस्टन के ललितकला संग्रहालय और विक्टोरिया अलबर्ट म्यूज्यिम लन्दन में है। इस विषय में निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि ये 32 के 32 चित्र एक ही रागमाला के भाग है। इस बात के प्रमाण उपलब्ध हैं, कि कुछ अन्य रागमालायें भी इसी शैली में बनायी गयी थीं, यद्यपि उनमे से बहुत कम चित्र उपलब्ध हैं।

बिलासपुर शैली के १७५० ई. के 84 चित्रों में से 72 रागमाला चित्र बर्लिन के संग्रहालय में हैं। इन चित्रों पर ई, आर वालडजशमिट ने विस्तृत प्रकाश डाला है। कांगड़ा शैली के 1790 ई. के ८० चित्र आधुनिक कला के राष्ट्रीय-गैलरी नई दिल्ली में उपलब्ध हैं। इन चित्रों पर एम. एस. रंधावा ने अपने लेख कांगड़ा राग माला चित्रकला रुप लेखा अंक XXIX, 1-2 पृष्ट 3 मे 29 तक विस्तृत विवरण दिया हुआ है।

पहाड़ी राग माला चित्रों में बहुधा एक सामन्त अथवा राजा, पशु, पक्षी, पूजा और ध्यान नारियां स्त्री पुरुष जोड़ी संगीत एव ताल बाद्य, नृत्य और शारीरिक व्यायाम आदि शामिल है।

उदाहरणत: राग हिंडोल का विम्बरुप सम्पूर्ण भारत के राग माला चित्रों की तरह पहाड़ी शैली के चित्रों में भी झूला झूलते हुए सामन्त और संगीत बजाती और गाती हुई अथवा सेवा में खड़ी स्त्रियों पर आधारित है। एज़ाजुद्दीन द्वारा लिखित पुस्तक पहाड़ीपेंटिंग और सिक्ख पोरटरेटस में चित्र न० 5 में राधा कृष्ण झूले में बैठे एक दुसरे की ओर देखते हुए दिखाए गये हैं। उनके इर्द-गिर्द स्त्रियां होली के खेल में मग्न गुलाल बिखेर रही हैं, और उन्हें इस बात का ध्यान तक नहीं है। सामने भरा हुआ तालाब है, जिसमें कमल के फूल खिले हुए हैं और पत्ते लहलहा रहे यह राग माला चित्र चम्बा का है।

इस चित्र में रचित राग हिंडोल संगीत विद्वान पंडित दामोदर रचित संगीत दर्पण में वर्णित जैसा बताया गया है बिल्कुल वैसा ही दिखाने का प्रयास चित्रकार ने किया है। ग्रन्थ के २१, २२२ श्लोकों में हिंडोल राग का वर्णन निम्न प्रकार से किया है।

हिन्दोल को रिधत्यक्त: सत्रय: कथितो बुधैः।
मूर्छना शुद्धमध्या, स्यात औडव काकलीयुत: ॥

इस श्लोक में राग के संगीत पक्ष का वर्णन दिया गया है, अर्थात-राग हिंडोल में रे ध वर्जित इसकी मूर्छना शुद्धमध्यम है, और इसकी जाति औड़व है, और इसमें स ग म, पनो, म प स स्वरों का प्रयोग होता है। इसके दूसरे श्लोक में राग का विम्बरुप या राग के ध्यान पर प्रकाश डाला गया है जो निम्न प्रकार है —

नितम्बिनीमन्द:रङ्गितासु दोलासु खेलासुखमादधान: ।
खर्व:कपोतद्युतिकामयुक्तो हिन्दोलराग: कथितो मुनीन्द्रै: ॥
सगम पनी मपस, इति हिन्दोल:

अत: इस राग का बिम्बरुप या ध्यान जिसको चित्रकारों ने चित्र बनाते समय आधार बनाया है उसका हिन्दी रुपान्तर इस प्रकार है :—स्त्रियों द्वारा धीरे-धीरे झुला झुलाते हुए खेल सुख का आनन्द लेते हुए जिसका रंग छोटे कबूतर की तरह चमक रहा है, और जो काम से भरपूर युवक है, वह हिंडोल राग का नायक या गायक के लिए बिम्ब अथवा ध्यान है।

हमारे प्राचीन संगीत शास्त्रकारों ने संगीत के सात स्वरों को सात भिन्न २ रंगों से संबंधित किया है अर्थात् षडज (स) श्वेत ऋषभ (रे) हरा गंधार (ग) सोना के समान मध्यम (म) लाल पंचम (प) कृष्ण अथवा काला धैवत (ध) पीत यानि पीला निषाद (नी) सभी रंगों की आभा से पूर्ण। स्वरों और रंगों का आपसी संबंध आज के मनो विज्ञान वेत्ता और भौतिक शास्त्रियों ने भी मान लिया है। उनके कथनानुसार कुछ स्वरों को गाने से उनकी तरंगों का कानों पर उतना ही प्रभाव पड़ता है जितना की आंखों पर रंगों को देखने से। राग हिंडोल में रे ध वर्जित है रे का रंग हरा और ध का पीत है। इस राग की रागमाला चित्र में हरे और पीले रंग का प्रयोग नहीं किया गया। इसमें स ग म पनी म प स स्वर समूहों के अनुसार इसमें सफेद, सोने के समान, लाल, काला आदि रंगों का भरपूर प्रयोग किया हुआ है।

इसी प्रकार अन्य चित्रों का बरीकी से अध्ययन करने पर कई बातें सामने आती हैं। यह विषय अत्यन्त गहन, चिंतन योग्य और कला के विस्तृत भंडार को लिए हुए है अन्त में हम यह कह सकते है कि इस पर विद्वतजनों द्वारा और शोध कार्य करना नितांत आवश्यक है।

७ ओल्डब्रोकहर्स्ट शिमला
१७१००२

समीक्षा दृष्टि

क्रान्तिकारी साहित्यकार : यशपाल

● शशि कान्त जोशी

साहित्य जगत में सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी साहित्यकार श्री यशपाल का नाम उन ख्याति प्राप्त साहित्यकारों में लिया जाता है, जिन्होंने समाज और साहित्य को जीने के लिए नए प्रतिमान नई दिशा तथा मौलिक चिन्तन प्रदान किया। इसके अतिरिक्त वे सामाजिक चेतना के अग्रणी कृतिकार ही नहीं बल्कि स्वतन्त्र लेखन के संघर्षशील जीवन की जीवन्तमूर्ति भी थे। साहित्यकार यशपाल को क्रान्तिकारी यशपाल से जोड़े बिना समझना कठिन है। उन्होंने देश को बम का दर्शन दिया था, तथा करोड़ों लोगों के लिए आत्मनिर्णय का अधिकार उपलब्ध करवाने के लिए शोषण व्यवस्था खत्म करने के विरुद्ध ब्रिटिश साम्राज्य वाद के खिलाफ भगत सिंह से मिल कर हथियार उठाया था। आत्म निर्णय के अधिकार के लिए यशपाल ने वायसराय की ट्रेन के नीचे बम रखा, उसी यशपाल ने दिव्या, दादा कामरेड, फूलों का कुर्ता, तुमने क्यों कहा था, मैं सुन्दर हूं, ऐसी रचनाएं लिख कर अपने लेखन के पूर्ववर्ती काल में ही जो विस्फोट और धमाका किया, उससे साहित्य समीक्षा के अभिजात्य की चूलें हिल गई थी।

उनकी "विप्लव" और "बागी" पत्रिकाओं ने आजादी के पूर्व भारतीय युवकों और बुद्धि जीवियों में इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर ली कि बेताबी से लोग उसके अंकों का इन्तजार करते थे। इसी क्रांतिकारी लेखक ने जब साहित्य सृजन के लिए अपनी कलम समर्पित कर दी तब सारे हिन्दी साहित्य में धूम मचा दी। आज उसी यशपाल की गणना विश्व साहित्य के बारह श्रेष्ठ उपन्यासकारों में की जाती है। सन् १९४१ में आचार्य नरेन्द्र देव ने यशपाल के सम्बन्ध में यह उचित ही कहा था "यशपाल बहुत शीघ्र ही भारत का अत्यन्त श्रेष्ठ कथाकार स्वीकार किया जाएगा।"

'शस्त्र शास्त्रे च कौशलम्' के धनी क्रान्तिकारी साहित्यकार यशपाल के व्यक्तित्व के मुख्यत: दो पक्ष रहे हैं—एक क्रांतिकारी और दूसरा साहित्यिक प्रस्तुत कृति में इन्हीं दो पक्षों पर विविध रूप से विवेचना की गयी है। उसके साहित्यिक जीवन को उनके क्रांतिकारी जीवन से अलग करके देखना असम्भव है। स्वयं यशपाल ने भी इन दोनों की एकरूपता में ही सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं

कृतित्व की सार्थकता को माना है। वस्तुतः इन दोनों पक्षों को एक साथ रख कर ही प्रस्तुत कृति में यशपाल को पूर्णतया समझने का प्रयास किया गया है। लेखक ने यशपाल के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए कहा है, कि यशपाल का क्रांतिकारी व्यक्तित्व एवं साहित्य कोई सामान्य कोटि का नहीं उसके इतने आयाम और पक्ष हैं, कि उनका सम्यक एव व्यवस्थित रूप से देख पाना कठिन है। वैसे भी तो सभी साहित्यकारों के व्यक्तित्व में कुछ न कुछ वैशिष्ट्य होता है, कि उसे खोज पाना समझ पाना या उसे विश्लेषित कर पाना सामान्यतः कठिन होता है, और यह भी तथ्य है. कि जब तक हम किसी भी साहित्यकार के उस वैशिष्ट्य को खोज न लें, बल्कि कहना चाहिए कि हृदयंगम न कर लें तब तक उसे या उसके साहित्य को भली भान्ति समझना सम्भव नहीं। यद्यपि हिन्दी में अब तक साहित्यकार यशपाल के साहित्यिक पक्ष पर पर्याप्त मात्रा अध्ययन, आलोचना, अनुसंधान एवं विश्लेषण कार्य हुआ है, परन्तु अब तक शायद ही कोई ऐसी पुस्तक उपलब्ध होगी जिसमें क्रांतिकारी यशपाल और साहित्यकार यशपाल को एक साथ देखा गया हो। प्रस्तुत कृति इस दिशा में पहला कदम है।

लेखक ने कृति के पूर्वार्द्ध में यशपाल के क्रांतिकारी जीवन को रेखांकित करते हुए उसके विविध पक्षों को स्पर्श करने का प्रयत्न किया है। कुछ ऐसे नये तत्वों को भी उद्घाटित किया है, जो अभीतक विस्मृति के गर्भ में पड़े हुए थे। यह तो विदित ही है, कि यशपाल की सशस्त्र क्रांतिकारी आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी रही और स्वतन्त्रता आन्दोलन में बढ़–चढ़ कर भाग लिया तथा अपनी जान जोखिम में डाल कर ऐसे असाधारण एवं साहसिक कार्य किये जिन्हें समाज के बिरले लोग ही कर सकते हैं। कृति में उनके द्वारा किये गए ऐसे साहसिक कार्यों का भी उल्लेख हुआ है। अपनी नौजवानी में वे क्रांति के पथिक बन गए थे और विप्लवी का धर्म और आदर्श भी निभाया था, उसके भी स्पष्ट संकेत दिये गए हैं। लेखक ने उनके क्रांतिकारी पक्ष को स्पष्ट करते हुए कहा कि यशपाल ने एक क्रांतिकारी जीवन के साथ अपना पथ आप प्रशस्त किया, किसी का पल्ला नहीं पकड़ा, किसी की उंगली पकड़ कर आगे बढ़ना नहीं चाहा। अपने जीवन के प्रथम चरण से ही इन्हें शस्त्र और शास्त्र दोनों के साथ गहरा अनुराग रहा है। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग देश की आजादी के लिए पिस्तौल या बम्ब लेकर या फिर वर्षों जेल की काल कोठरियों में अपनी कल्पना द्वारा देश को जनता का सही अध्ययन करते हुए बिताया है। लेखक ने इस की झलक भी कृति में दी है। सिंहावलोकन, (जो तीन भागों में प्रकाशित हैं) को लेखक ने यशपाल की आपबीती कहानी होने के साथ-साथ क्रांतिकारी आन्दोलन का प्रमाणिक इतिहास भी माना है। इस सदी के तीसरे दशक से लेकर सन् 1938 तक क्रांतिकारियों के जीवन का विशद चित्रण सिंहावलोकन में किया गया है। इस दौरान यशपाल कभी जेलों में रहे तो कभी फरार के रूप में जगह-जगह घूमते रहे। कृति के उत्तरार्द्ध में यशपाल के कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। लेखक का मत है. कि वे अपने साहित्यक जीवन के साथ ही मार्क्सवादी विचार धारा के विराट चेता बन गए थे। इसोलिए उनकी अधिकांश रचनाओं में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रतिफलन हुआ मिलता

है। उनके साहित्य का सर्वप्रमुख प्रयोजन है – समाज से शोषण का अन्त। उनकी सभी रचनाओं का प्रयोजन यही है। प्रगतिशील लेखक के रूप में उन्होने अपनी रचनाओं के माध्यम से हमेशा जनवादी आकांक्षाओं को उजागर करते हुए रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, प्राचीन मान्यताओं, नैतिक आडम्बरों आदि पर करारी चोटें की हैं और समाजवादी समाज की संरचना के लिए उनकी कृतियों ने उनके पाठकों को प्रेरित किया और जागरूक किया है। पाठकों को ही नहीं, लेखकों को भी उन्होंने कम प्रभावित नहीं किया। इस कृति में लेखक ने यशपाल को उपन्यास कार, कहानी कार, नाटककार, निबन्ध कार, पत्रकार और अनुवादक आदि कई रूपों में देखते हुए अलग-2 शीर्षक के अन्तर्गत मूल्यांकन करते हुए कहा है कि देश में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने, उच्चकोटी स्तर का मनोरंजन एवं गंभीर साहित्य देकर जनता की साहित्यिक रूचि परिष्कृत करने तथा अपने लेखकों को अनुप्रमाणित करने में उन्हें स्पृहणीय सफलता मिली है। उनकी कृतियों के महत्व का मूल्यांकन करते हुए इस में कहा है कि यशपाल की कृतियां भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है।

कृति के अन्त में यशपाल एक व्यक्तित्व शीर्षकान्तर्गत उनके व्यक्तित्व के उस वैशिष्टय को उद्‌घाटित किया गया है जो उन्हें धरती के अन्य साहित्यकारों से अलग करता है। लेखक ने उनके साहसिक एव जोखिम भरे कार्यों को देखते हुए उन्हें यशपाल कहना उचित समझा है। एक शब्द मे कहे तो वे सच्चे अर्थो में ऐसे क्रांतिकारी साहित्यकार थे जो अपनी सम्पूर्ण संकल्पशक्ति से जिसमें उनकी अन्तश्चेतना से लेकर उनके जीवन के सभी क्रियाकलाप एवं लेखनी के उद्‌गार सम्मिलित हैं। धरती की समूची व्यवस्था को नया रुप दे देना चाहते थे जिससे कि उस पर निवास करने वाला प्राणी सुखी हो। उनके समस्त व्यक्तित्व एव कृतित्व की साधना का सर्वोपरि लक्ष्य यही था। लेखक ने अपनी सशक्त लेखनी द्वारा सरसशैली इस पक्ष को उद्‌घाटित करने की सफल प्रयास किया है। डां. गणपति चन्द्र गुप्त, भूतपूर्व कुलपति ने अपने प्राक्कथन द्वारा इस कृति के महत्व को और बढ़ा दिया है।

यह कृति हिन्दी-साहित्य के एक अंग के अभाव की पूर्ति करती है। इसकी शैली प्रभावोत्पादक और मार्मिक है और इसमें शब्दाडम्बर का घटाटोप नहीं। यशपाल का जीवन संघर्षों से भरी कहानी है साहित्य विशाल है, फिर विविध पक्षों को सूक्ष्म दृष्टि से विश्लेषित करते हुए कुछ नए तथ्यों को जिस गहराई से समझा और जिस स्पष्टता से चित्रित किया है, वह बेजोड़ है। इस कृति से निश्चय ही यशपाल के व्यक्तित्व एव कृतित्व को न केवल समझने में ही सहायता मिलेगी अपितु नई पीढ़ी के युवा पाठकों की उनमें विशेषत: यशपाल के क्रान्तिकारी रुप में नई रुचि जागृत होगी। अतएव अनुसंधित्सुओं एवं सामान्य जानकारी जिज्ञासुओं के लिए यह कृति अपने ढंग की प्रथम कृति है। कृति की साज सज्जा, कागज और मुद्रण आकर्षक है। मूल्य भी नहीं अखरता। आवरण पृष्ठ पर यशपाल के चित्र के साथ क्रान्ति का प्रतीकात्मक मात्र चित्र बड़ा आकर्षक और मनमोहक इस महत्वपूर्ण कृति प्रणयन और प्रकाशन के लिए लेखक और प्रकाशक (यशपाल साहित्य परिषद) दोनों बधाई के पात्र हैं। ऐसी परिचयात्मक पुस्तकों की आज बड़ी आवश्यकता है। पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है।

समीक्षित पुस्तक
क्रांतिकारी यशपाल, लेखक डा. ब्रह्मदत्त शर्मा,
यशपाल परिषद, नदौन। मूल्य : 24/- रुपया

सी. १४/७५ फागली
शिमला-१७१००४

संस्कृतानुभागः

tharahkardu.in

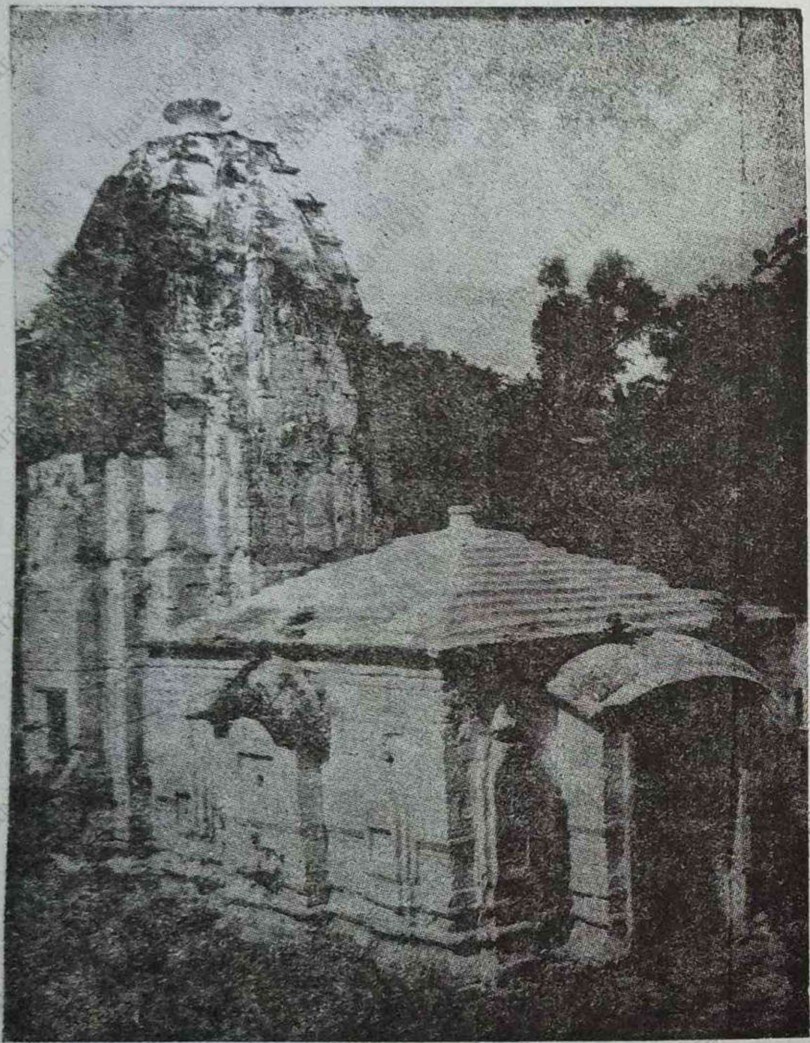

रघुनाथ मन्दिर हरीपुर कांगड़ा
छायाकार : रमाकान्त जोशी

tharahkardu.in

सम्पादकीयम्

प्राचीन काले भारते अनेकानामपि राज्यानाम्-एकमेवपरस्परमालाप व्यवहार भाषञ्चासीत् संस्कृतम् । प्राक्तनानामार्याणामपि संस्कृत व्यवहारभाषा आसीत् । सर्वैव्यवहार विशेषज्ञैर्ज्ञायते यत् पारे समुद्रमासीत्तदानीं संस्कृतस्य प्रचुरः प्रचार; । तत्कालीनाः राजानः पण्डिताः पुरोहिता वैद्या; मन्त्रिणः प्राड्विवाकाश्च सम्यक्तया अनायासं संस्कृतस्य व्यवहारं कुर्वन्तिस्म ।

विदेशेभ्यः समागता सर्वेऽपि यात्रिणः व्यवहारे संस्कृतस्य प्रयोगं कुर्वन्ति स्म । कवयः राजनीतिविद; शिक्षा शास्त्रिणश्च संस्कृतमेव लिलिखुः बभाषिरे च । संस्कृतमखिलस्य देशस्य सम्माननीयानां जनानां सम्पर्क सूत्रमप्यासीत् ।

महाभारत कालेऽपि संस्कृतम् राज्ञां, कवीना पंडितानाँ शिष्ट वर्गस्य च भाषा अऽसीत् रामायण कालेऽपि राज्ञां द्विजानां, विदुषां, शिष्टानाञ्च संस्कृते एव मिथः व्यवहाराः अभूवन् ।

पुरातने भारतवर्षे संस्कृत राजमान्या राजभाषाऽसीत् । संस्कृतज्ञाः एवाभवन् राजपुरुषाः सचिवाः सेनापतयः पुरोहिताः वैद्याश्चापि । राजसभासु कवयाः संस्कृत काव्यानि अपठन् । राजानः पण्डितेभ्यः आश्रयं प्रायच्छन् । अनन्तरमन्तराले संस्कृत भाषायाः दशाः दयनीया संजाता । स्वतन्त्रतानन्तरं केन्द्रीय सर्वकारेण संस्कृतं प्रति रुचिः प्रदर्शिता विविधा योजनाश्च संस्कृतोत्थानाय प्रारब्धा । राज्य सर्वकाराणाञ्च कृते निर्देशाऽपि प्रदत्ता सस्कृतस्य समुन्नत्यै । इदानीं हिमाचल सर्वकारोऽपि संस्कृस्य विकासाय च प्रयतते। हिमाचल प्रदेशे संस्कृत महाविद्यालयानां कृते डिग्री कालेज समकक्षं मान्यता प्रदत्ता । अस्माकं मुख्यमन्त्री श्री वीरभद्र सिंह महोदयानां प्रेरणया तथा च आयुक्त एवम् सचिव श्री महाराज कृष्णकाव महोदयानां वि शुद्ध सकल्पोऽपि सस्कृतस्य प्रतिष्ठायै दरीदृश्यते ।

भारतमन्ततो गत्वा स्व गौरव प्राप्यस्यति सस्कृत सर्वेषां व्यवहाराणां माध्यम भूत्वा भारतीय ज्ञान विज्ञान शास्त्र कलाकलाप विद्याविभेद कौशलञ्च प्रकाशन्ती पुनरपि स्वौच्च स्थानं लप्स्यते । संस्कृतस्य विरोधिनः विद्वेषणश्च सूर्योदये तमस्नाश इव प्रणश्यन्ति । इदानीं स्वतन्त्र भारते वर्षे स्वैरगुणरेव सस्कृत गृहीष्यति तन्महनीयस्थानम् ।

"जयतु संस्कृतम्"

रमाकान्त जोशी

अम्बिकाराधना

1 मातस्त्वदीय चरणाब्जयुगं भजामि
यत्राप्यते भवभीतिहरासुशान्तिः ।
यत्रोन्मेषलय दीव्य विचित्र लीला
पादोदकं ज्ञानसुधाम्बुमिष्टम् ।।

2 ज्योतिर्मयस्ते मणिद्वीप रम्यः
आनन्दपूर्णः पशुपाश गीर्णः ।
महाकाल कलितः स्तुतोऽर्चितश्च
तपोज्ञान दीप्तः भावैकलभ्यः ।।

3 शोभास्यदीव्या अनुभूतिगम्या,
ब्रह्मादयोऽपि मुह्यन्त्यत्र ।
महाप्रलयकाले त्रस्तोऽपि लोकः
सहस्रेन्दु कान्तिंवितनोति शुभ्रां ।।

4 कैलाशपीठे योगीश्वरोऽपि,
योगाधिरुढः प्रभुर्पञ्चवक्त्रः ।
निमील्यनेत्राणि वियोगविधुरः,
अद्वैतभावं भावैः प्रयातः ।।

5 कलापूर्णचन्द्रः मुखमण्डलन्ते
यल्लास्यजातः विश्वोविभाति ।
काते स्तुतिः स्यात्रिपुराम्बकेऽद्य
श्रद्धाप्रसूनैस्त्वामर्चयेऽहम् ।।

आचार्य हरिवल्लभ शर्मा
सं महा-वि. सोलन

भारतीय-संस्कृतिः

● आचार्य रामानन्द शर्मा

सम् पूर्वात् कृधातोः क्तिनिप्रत्यये संस्कृतिशब्दो निष्पद्यते । संस्करणं परिष्करणंचेतसः आत्मनो वेति तत्सामान्यार्थः । संस्कृतेः लक्षणविषये मतवैविध्यं विद्यते विदुषाम् । डा० सम्पूर्णानन्दस्य शब्देषु समष्टिगत-समानानुभवेभ्यः समुद्भूतः पदार्थ एव संस्कृतिःवर्तते । श्रीमान् राजगोपालाचारी-महाभागः जातौ राष्ट्रे समाजे वा शिष्टजनेषु विचार-वाणी-क्रियाणां व्याप्तं स्वरूपमेव संस्कृतिरिति भणति। प्रकृते विधानानुसारं संस्कृता पद्धतिरेव संस्कृतिरस्ति । संस्कृतिः मानवजीवनस्य शक्तिः, पवित्रकारिणां साधनानां विमला विभूतिः, राष्ट्रीय-आदर्शस्य गौरवमयी मर्यादा, स्वतन्त्रतायाश्च प्रतिष्ठा अस्ति ! सैव सुखं ससाध्य चेतः प्रसादयति, दुर्भावान् दुर्गुणान् च विदार्य, सद्भाव-सद्गुणान् प्रददाति । दुःखाज्ञानान्धकारमपसार्य सुखज्ञान-ज्योतिः प्रकाशयति । वैयक्तिक-सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-जीवनेषु कला-शिक्षयोः, धर्मकर्मणि च संस्कारं कामयतां जनानामभ्युदयामार्गम् प्रशस्तं करोति । डा० मंगलदेव-शब्देषु संस्कृतेरिदं रम्यं रूपमस्ति-"कस्यापि देशस्य समाजस्य वा विभिन्नजीवन व्यापारेषु सामाजिक बन्धनेषु वा मानवीयत्वदृष्ट्या प्रेरणाप्रदानां तत्तदादर्शानां समष्टिरेव संस्कृतिरस्ति ।" वस्तुततस्यामेव सर्वस्यापि समाजिकजीवनस्योत्कर्षः पर्यस्यति । तयैव तुलना विभिन्न-सभ्यतानमुत्कर्षापकर्षावनुमीयेते । किं बहुना संस्कृतिरेव वस्तुत;सेतुविधृतिरेषां-लोकानामसभेदाय इत्येवंवर्णयितुं शक्यते । अत एव च सर्वेषां धर्माणां संप्रदायानामाचाराणां च परस्परं समन्वयः संस्कृतेरेवाधारेण कर्तुम् शक्यते ।

ममात्राभिमतं यत् जीवनस्य आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक-कला-शिक्षाधर्मादिषु क्षेत्रेषु उन्नतिकारकः, चेतः संशुद्धिकारकश्चचिन्तन व्यापारः संस्कृतिशब्दः ।

आंग्लभाषायां कल्चरशब्दो न तथागंभीरमर्थं धत्ते यथा संस्कृतिशब्दः । कल्चरपदेन, मनुष्यस्य समाजे निवासप्रकारः वेषभूषादिषून्नतिश्च गण्यते बाह्यलंकारेण भूषितः सुसज्जितः पुरुषः आंग्लभाषायां 'कल्चर्ड' इति निगद्यते । अन्तः शुद्धिस्तत्र प्रायेण आवश्यकता नानुभूयते । तथा च प्राह टी० एस० इलियट महोदयः कल्चरपदेन ममाभिप्रायः एकस्मिन् स्थाने निवसतां पुरुषविशेषाणां समुदायस्य

निवासप्रकारो वर्तते ।

संस्कृतिः धर्मश्च-केचित् भ्रान्तामन्दमतयो जनाः संस्कृतौ धर्मैः चाभिन्नत्वं पश्यन्ति, किन्तु न तत्तथास्ति । धर्मस्तु संस्कृतौ संन्निविष्टो । धर्मः खलु मनुष्यं सदाचार, दयाशीलं, सहनशीलं साहसीनं विद्यते, इमे गुणाः एव च मनुष्यं संस्कृतं कुर्वते । परन्तु वर्तते तयोर्भेद एव विभिन्नविचाराणां, मनुष्याणां धर्मा भिन्ना भवन्ति. किन्तु संस्कृतिः सर्वेषामेकैव । धर्मः शासन-सम्मतविचाराणामनुमोदनं विदधातिसंस्कृतौ च शास्त्राविरुद्धा लौकिकता-ग्रालौकिता च विराजते ।

संस्कृति कला च-कलायाः संस्कृतिश्च गाढ़सम्बन्धं वीक्ष्य केचित् विद्वांसः तयोरभिन्नत्वं प्रदर्शयति । तच्चाप्यसमीचीनं नाम । सुसंस्कृतो जनःश्रेष्ठ कलाकारः अपि भविष्यतीति न निश्चितम् । असंस्कृतः अनैतिकश्चापि कलापारङ्गतः क्वचित् विलोक्यते, तस्मात् संस्कृतिः कला च उभे भिन्ने, कलायां संस्कृतेः प्रतिबिम्बं दृष्टिपथमायाति तस्मात् सा संस्कृतेरेवाङ्गम् ।

संस्कृति शिक्षा च-शिक्षा अपिसंस्कृतेरङ्गभूता । सुशिक्षामवाप्य जनः संस्कृतो भवति । किन्तु न तत्र स्थिरो नियमः, शिक्षिताः जना अनाचारः, भ्रष्टाः, असंस्कृताश्चापि जायन्ते । कदाचित् अल्पशिक्षितः अपि सुसंस्कृतो भवति संस्कृतिः शिक्षिते, अशिक्षिते उभयोरपि प्रभावं जनयति ।

सस्कृतिः सभ्यता च-संस्कृतिसभ्यताशब्दौ तथान्योन्यं सम्बुद्धौस्तः यतदभिन्नत्वं मन्यते कैश्चित् । तच्चासमीचीनं नाम । संस्कृतिः आत्मनः अभ्युत्थानस्य प्रदर्शिका विद्यते सभ्यता च शरीरस्य मनो विकारान् द्योतयते । संस्कृतिरन्तस्तत्वं सभ्यता च बाह्यतत्वं वरीवर्ति ।

सभ्यताशब्दः सभ्यपदान्निसृतः । सभायां साधुः सभ्यः इति तस्य व्युत्पत्तिरस्ति । अतः सभ्यता तु सामाजिक गुणो वर्तते । तस्यां केवलं बाह्यालकरणंवेषभूषां वा जनाः प्रायेण गणयन्ति । संस्कृतौ अन्तः गुणाविलोक्यन्ते । डा० सम्पूर्णानन्द-महाभागस्य मते संस्कृतिः आन्तरिकी, मानसिकी वास्ति, सभ्यता च बाह्याभौतिकी वा । संस्कृतिः चिरयांगी क्रियते सभ्यता च सत्वरं सहजमेव चानुक्रियते । संक्षेपतः संस्कृतौ सभ्यता च सत्वरं सहजमेव चानुक्रियते । संक्षेपतःसस्कृतौ सभ्यता अन्तर्भावो विधातुं शक्यते, सभ्यतायांनान्तर्भवति । संस्कार रूपे अवशिष्टाः सभ्यतैव सस्कृतिर्जायते । सभ्यता संस्कृतेरभिव्यक्तिमात्रं वर्तते ।

संस्कृतिः संस्कृत-साहित्यंच-"संस्कृतं संस्कृतिश्चैव श्रेयसे समुपास्यतामिति" कोविदानां कथनं भारतीय संस्कृतेः संस्कृतस्य चान्योन्याश्रयत्व प्रतिपादयति । विश्वविश्रुता भारतीय संस्कृतिः संस्कृत साहित्ये सन्निहितेति न मतिमतां मतभेदः साहित्यमेवसंस्कृति, स्वर्णनिकषोपलमास्ते । आर्याणां सहित्यं पक्षपातं विहाय विलोक्येत चेत्तर्हि संस्कृतिसरिता कस्मात् कालात् समुद्गता सम्प्रति चापि तथैव प्रवहतीति स्पष्टं स्यात् । भारतीय संस्कृतेरुद्गमः प्रावाहश्च केवलं संस्कृतसाहित्येनैव ज्ञातुं पार्यते । संस्कृतभाषा संसारस्य समस्तभाषाणां आद्या वरीवर्ति इत्यत्र न मतिमतां विप्रतिपत्तिः । भारतीयास्तु विचक्षणास्तामेव सर्वभाषा जननी मन्यते ।

सोमसी

विश्वस्याशेषा अपि विबुधा: ऋग्वेदं, विश्वपुस्तकालये आदिग्रन्थत्वेन सम्मानयन्ति । भारतीयास्तं वेदं ब्रह्ममुखानिसृतं मन्यन्ते । तस्मादादिग्रन्थाच्च अद्यावधि विशालं वाङ्मयञ्चेद-वलोक्येत तर्हि भारतीयसंस्कृते: निरतिशयकमनीयं चित्रं प्रस्फुट भवेत् ।

सर्वविद्यानिधानम्, त्रिभुवने आदिग्रन्थानां चतुर्णाम् वेदानां प्रधानमुद्देश्यं संस्कृतेरूपदेश एवास्ते सर्वत:पूर्वम् संस्कृति: नि:शेषलोकेन तत एव शिक्षितेति वेदेषु कृतभूरिपरिश्रमाणां भारतीय पाश्चात्यविदुषां सुदृढा धारणास्ति । वर्तमान-युगे पदे-पदे हिंसा जनितत्रास:, श्रूयते दृश्यते अनुभूयते च । परन्तु प्राचीन भारतस्य मानव जातौ "माहिंस्यात् सर्वभूतानि," इत्युपदेश: वेदेभ्य: एव प्रारब्ध: । चतुर्दिक्षु विराजमानानि राष्ट्राणि यद्सत्यमनृतं च सर्वसम्मत्या त्याज्य ग्रहणीय: च निगदन्ति तत्कृते वेदभगवानाह् "नानृतं ब्रूयादिति," आधुनिका पाश्चात्यपंडिता: संस्कृते: अर्थम् अचार-व्यवहार: इति विदधति । विलोक्यतां च, ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य-शूद्राणां चतुर्णाम् वर्णानां ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-सन्यासा-श्रमाणां च विभागं विधाय, यस्मिन् यस्याधिकार: तस्मिन् तथाविधस्याचरणस्य शिक्षा वेदा देवा दिता ।

समाजस्य ते वेदा: आचारव्यवहारे कदृशीमागत रमणीयां व्यवस्थां वाँच्छन्ति, इति एकेन मंत्रेणैव ज्ञायते । मनुष्य; ईश्वरं तदेव याचते यत्तस्मै सर्वाधिकं रोचते । वेदेष्वस्माकं प्रार्थनास्ति यत् ।

"आ ब्रह्मन् ब्राह्मवर्चसी जायताम् । आ राष्ट्रे राजन्य: शूरा इष्वयोऽतिव्याधि: महारथो जायताम्। दोग्ध्री-धेनुर्वोढा नाड्वानाशु: सुप्ति: पुरन्ध्रीर्योषा जिष्णू रथेष्ठा; सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम् । निकामे निकामे न: पर्जन्यो: वर्षतुफलवत्यो न औषधय: पच्यन्ताम् योगेक्षेमो न: कल्पताम् ।"

अत्र मूलमन्त्रे सुन्दरीणां कृते पुरन्ध्री शब्दो विद्यते यदर्थः सुचरित्रा खलु । अयं भावो यत् तथाविधा: नार्यो देश जायन्ताम् या आचारव्यवहारकारणात् सुन्दर्य:स्यु: । समाज: स्त्रीषु यस्याम-वस्थायां यादृशमाचारव्यवहारं काम्येत तासु तादृश: एव आचार: स्यात् । देशे ज्ञानप्रकाशिका: संरक्षिकाश्च शक्तयो यदा सर्वविधप्रकारै: समर्था भविष्यन्ति का तदावश्यकतावशिष्यते । धनधान्य-समृद्धिचर्चापि मन्त्रे वर्तते । तत्कृते च भूमि: सम्पतिश्च समये मिलिष्यत्येव । ईश्वरस्यानुकम्पा सहायता च तावत् वृष्टया एवाभिलिषितास्ति तस्मात् किमन्यदत्रशिष्टं समाजे आचार-व्यवहार व्यवस्थाप्रसंगे । चित्रं यत् गोवृषभाश्वानां पशूनां संस्कार अचार-व्यवहारञ्चापि ऋषिभिर्मन्त्रे निबद्ध: । इत: अप्यधिका का नाम सूक्ष्मता संस्कृतावभिलष्येत ।

"वेदानामनन्तरमुपनिषदां स्थानं विराजते । उपनिषदो वै आर्यजाते: ज्ञानराकष्ठा: हिन्दूनां सर्वस्वभूताश्च सन्ति । तासु सस्कृते: व्याख्या कीदृशी कियती चास्तीत्यत्र नैकविद्वद्वरेण्यै: लिखितम् एक एव दृष्टान्त: अत्र पर्याप्स्यति ।

'वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति ।। सत्यं वद ।। धर्मम् चर ।। स्वाध्यायान्मा प्रमद: ।। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सी: ।। सत्यान्न प्रमादितव्यम् ।। धर्मान्न प्रमादि-

तव्यम् ।। कुशलान्न प्रमदितव्यम् ।। भूत्यै न प्रमदितव्यम् ।। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ।। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् ।।"

गृहस्थ जीवनं कीदृशं भवेदिति व्याख्यानाय तैत्तिरीयोपनिषदः अयमनुवाक आरभ्यते । अत्र खलु गुरुः वेदादिकमध्याप्य गृहस्थधर्मपालनाय शिष्यमुपदिशन्नस्ति । रम्यः स्पष्टश्चासावुपदेशः व्याख्याम् नापेक्षते । इदं चोपदिश्य पुनः गुरुर्ब्रवीति—

"मातृदेवोभव ।। पितृदेवोभव ।। अतिथिर्देवोभव ।। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि ।। नो इतराणी ।। श्रद्धया देयम् ।। अश्रद्धया देयम् ।। ह्रिया देयम् ।। संविदा देयम् ।।"

इममुपदेशं श्रुत्वा न कामः कश्चिदवशिष्ट व्यवहारविषये । तथापि शंका चेत् काचिदवशिष्येत तर्हि-ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः ।। युक्ता अयुक्ता अलूक्षा धर्मकामाः स्युः ।। तथा ते तत्र वर्तेरन् ।। तथा तत्र वर्तेथाः। अयमेव वर्तते भारतीय संस्कृते सारांशः अयमेवोपदेशः रहस्यं च वेदानामस्ति ।

अथ विलोक्यतां तावत् सूत्राणि स्मृतीश्च । सूत्रेषु गृह्यसूत्राणि प्रधानानि सन्ति । उभयत्रापि संस्कृतिरन्वेषणीया। स्मृतिरेव धर्म शास्त्रं निगद्यते । श्रुतिस्तु वेदोविज्ञेयोधर्मशास्त्रन्तु वे स्मृतिः' इति वाक्यात् । धर्मशास्त्राणि अचार-व्यवहारस्य निधयो विद्यन्ते । मनुयाज्ञवल्क्यप्रभृतयः आचार-व्यवहार शिक्षाप्रदानाय सगर्वम् घोषणामकार्षिषुः —

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।

भगवता याज्ञवल्क्येन लोकहिताय कानिचित् कर्तव्यान्यभिहितानि—

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
दानं दया दमः क्षान्ति सर्वेषां धर्मसाधनम् ।।

मनुगौतम्-वशिष्ठ-शंख-हारीत-पराशर-प्रभृतेः सर्वैः स्मृतिकारैः संसारवासिभिः सह कीदृशः निर्वाहः स्यादित्यत्र विषये आचरणानि लिखितानि । अथ पुराणान्यायान्ति । अष्टादशपुराणानां सारः पादचतुष्ट्ये एव संगोपितः पुराणकारेण—

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनवद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पपाय परपीडनम् ।।

आचार-व्यवहारस्येतादृशी संक्षिप्ता शिक्षा क्वापि अन्यत्र न प्राप्यते ।

अथेदं धार्मिक साहित्यं विसृज्य साहित्य शास्त्रे अपि दृष्टिनिक्षेपो विधेयः। अत्रत्यो ब्रह्मा डिडिमघोषं करोति यत्—

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथैव परिवर्तते॥

कश्चिनास्त्यत्र कविरूपाः स्रष्टा विरंचेरप्यधिकः ब्रह्मणः विनिर्मितः ब्रह्मांडः कवये न रोचते। स्वरुच्यनुकूलं द्वितीयं ब्रह्माण्डं च सनिर्मिमीते। अहो कियत् स्वातन्त्र्यं परिलक्ष्यते। किन्तु संस्कृतेरभिमुखं तु कवि प्रजापतयोऽपि शिरो नमयन्ति। येन सहृयादृशं व्यवहारवर्णनं समुचितं खलु तत्र तस्मात् विरुद्ध वर्णनेन कविसम्प्रदायस्योल्लघनं जायते।

अनौचित्यादृते नान्यत् रस भङ्गस्य कारणम्
औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा॥

अपि च काव्यसाहित्यस्य सृष्टिः यत्कृते अभूत् तत्रापि संस्कृतिपुरस्सरं गम्यते। यथा वेदस्य प्रभुसम्मितोपदेशः पुराणास्तुनीनां सुहृत्सम्मितोपदेशः तथैव काव्यानां कान्तासम्मितोपदेशः। काव्यानां मूलोद्देश्यमस्ति चरित्रशिक्षा। रामादिवद्वर्तितव्यम् न रावणादिवत्। काव्यसृष्टेरिम-मुद्देश्यं वीक्ष्य संस्कृतेः उपदेशः काव्येन कियात् योगः कृत इति अनुमातु शक्यते। स्वामिनः सुहृदो वोपदेशः कामं न जनयतु कस्मिंश्चित्प्रभावम्, तथापि प्रेमोन्मतं कान्तं विधाय, कान्तया कृते हितोपदेशः प्रत्यगमाश्लिषति। इदं चावलोक्य संस्कृतिसंरक्षणे सर्वाधिक प्रभावः काव्यानामेव अस्ति इति उच्यते तर्हि नात्रातिशयोक्तिः स्यात्।

साहित्यकाराणान्तु सर्वसम्मतो ननु अयं सिद्धान्तो यत् गद्यपद्यात्मकं सर्वविधं काव्यम् कामपि शिक्षामंगी कृत्यैव विरचितं स्यात् पाश्चात्य-कोविदा नामनुकरणैः निर्मिता आधुनिकी कथा भवतु नाव केवलं मनोविनोदाय, किन्तु भारतस्य दृष्टिस्तु अत्रापीयमेवास्ति यत् कथा आख्यायिकाश्च कांश्चित् चरित्रशिक्षामेव सर्वमानवेभ्योददुः।

इदं वर्णनं सम्यक् साधयति यत् भारतीय-संस्कृते रूदगमः वेदात् संजातः, तत् आविर्भूय सा विविधे संस्कृत साहित्ये स्फुटतनुरभूत्। अतः संस्कृतिः सस्कृतेः संस्थितेति कथनं न असाम्प्रतम्। संस्कृत साहित्याध्ययनेन संस्कृतेः स्वरूपं सततं स्फुटं जायते। तस्मात् संस्कृति—संस्कृतयोरू भयोरपि अंगीकारेण लोकस्य श्रेयो भविष्यति। तत्सर्वथा युक्तिमभिहितं केनचित्—"संस्कृतिश्चैव श्रेयसे समुपास्यताम् इति।"

भारतीय-संस्कृतेः विशेषताः — भारतीय-संस्कृतेः क्षेत्रमतीव विस्तृतमस्ति। समस्तमपि जीवनं जीवनव्यापारं च तद्व्याप्नोति।

1. **धर्मप्राधान्यम्** —भारतीय-संस्कृतेराधारस्तम्भः धर्मो वरिवर्ति, धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः इति भावना भारतीषु व्याप्यति, धर्म-पदेन नहि कश्चित् सम्प्रदाय-विशेषः अत्र विवक्षितः। जगद्धारकाणि यमनियमप्रभृतीनि, धृतिक्षमाप्रभृतीनि, च तत्त्वानि धर्मपदेन व्यपदिश्यन्ते। स एव

सर्वोत्कृष्टः धर्मः येन, इहलोके सर्वतः अभ्युदयः परत्र च निश्रेयसप्राप्तिः स्यात्, सम्यगाह न्याय-दर्शनकार;—यतोऽभ्युदयातः श्रेयस् सिद्धिः स धर्मः अस्य च धर्मस्य महत्वपूर्णस्थानं वरिवर्ति भारतीय-संस्कृतौ। धर्मेण सम, दर्शनानामपि महत्वपूर्णम् स्थानमस्ति। षड्दर्शनैः सदा संस्कृति

प्रभाविता कृताखलु। तेषां सिद्धान्ता. नास्तिकदर्शनाना च विचारा, भारतीय-जनतासु पुराकलादद्यावधि विराजन्ते। अतः धर्म दर्शनञ्च विहाय संस्कृतेरध्ययनमपूर्णमस्ति।

(2) आध्यात्मिका भावना :—धर्मस्याधारः अध्यात्म भावना वरीवर्ति। तया च भारतीया संस्कृतिः व्याप्ता विद्यते। समस्तं संस्कृतवाङ्मयमनया भावनया व्याप्तं ननु। इयं हि चेतः प्रसादयति, मनुष्यं मोक्षमार्ग प्रदर्शयति। वेदेषु उपनिषत्सु गीतायाञ्चार या भावनया: कमनीयं रूपं बिराजते। इमां भावनामाश्रितो जन एव उदारः, परोपकारी, दयादाक्षिण्यादि युक्तश्च भवति। इयं भावनैव परलोक प्राप्ति कारयति।

धर्म-दर्शनाध्यात्मनानां मूलं शरीमस्ति अत एव 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधन' इति कालिदास-सदृशां विचक्षणा वदन्ति। भारतीय संस्कृति. धर्मसाधनाय स्वास्थ्ये शरीर समृद्धौ च महत्ध्यानं-ददाति। अत एव, धमार्थ काममोक्षेषु प्रत्येकस्य गौरबमंगीकृतं शास्त्रैः। अस्मादेव हेतोः आर्थिक-समृद्धौ, भारतवासिभिः सतत प्रयासा; विहिताः। तस्मात् भारतीय-संस्कृतेः विचारप्रसंगे कश्चिदपि लेखकः आर्थिकस्थितिः प्रसगं च जहाति।

3. वर्णाश्रम व्यवस्था : ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राणां वर्णानां, ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ सन्यासाश्र-माणां च स्थितिः संस्कृतेपरा विशेषता, धर्माध्यात्मक्षेत्रे देशसमाजोन्नत्यै ब्राह्मणवर्णस्य महन्महत्वम्, देशरक्षयै शासन व्यवस्थायै च क्षत्रियस्य गौरवं खलु स्वीकृतम। प्रत्येक देशस्य संस्कृतिः राजनीत्या राजनीतिकविचारैः राज्ञां विचार-व्यवहारैः, शासन प्रबन्धैश्च प्रभाविता तस्थौ सदा। अत एव भारतीय संस्कृतेरध्ययेतारो लेखकाश्च तत्देशस्य राजनीतिक दशामनिवार्यतया, जानन्ति, लिखन्ति च वैश्यानां महत्वम् आर्थिक, दृष्टया देशस्य समृद्धौ च विद्यते, ते एव सर्वविधकलानां उद्गमाः भवन्ति। शूद्राणां स्थिति सेवक रूपेण स्वीकृता लघु कार्येषु. तेषां महत्वमस्ति आसीत् च।

ब्रह्मचर्याश्रमः शिक्षादृष्ट्या गौरवपूर्ण स्थानं धत्ते अत्रैव, मनुष्यजीवनस्य वास्तविको विकासो जन्म च भवति। अस्मिनन्नेवाश्रमे सर्वविध-कलानां शिक्षा चापि भवति, कलाश्च भारतीयसंस्कृतेः अतीव हृदयावर्जकं चित्र प्रस्तुवन्ति। अत एव संस्कृतेरध्ययन काले कला क्षेत्रे उन्नतिः विलोक्यते। अयमेवाश्रमः शिक्षाकालः वर्तते। अत एव संस्कृतेः जिज्ञासुभिः लेखकैः समाजस्य देशस्य वा शिक्षा-प्रणाली स्पृश्यते। तां बिना अपूर्णम् खलु संस्कृतिज्ञानम्। गृहस्थाश्रमः सर्वोत्कर्षेण स्वीकृतः ऋषीभिः। सर्वोपकार क्षममाश्रमं ते इति रघुवंशवाक्यमपि तदेव महत्वमिंगितयति। अस्मिनन्नेवाश्रमे अन्ययाश्रमा व्यवस्थिता। वानप्रस्थाश्रमः, जीवनस्य चरमभागस्य सुखाय, शान्त्यर्थञ्च, सज्जारूपो निर्धारितः। अस्मिन् स्थितो जनः गृहस्थभारं विसृज्य सुख शान्ति लाभाय वनं गत्वा सन्ध्यावन्दनस्वाध्या-येषु मन आधात्त। कन्दमूलैश्च वृत्तिमकरोत्। सन्यासाश्रमः चरमो। इममाश्रममाश्रित्य भारतीयाः सर्वकर्मसन्यासपुरस्सरा लोक कल्याणयेतस्तयो बभ्रमुः। स्वोपदेशैश्च उपावयन्।

अनयोः वर्णाश्रमयोरेव भारतीय संस्कृतिः संस्थिताभूत्, अद्यापि च वर्तते।

(4) भाग्य-कर्म-पुनर्जन्म-भावना भारतीय-संस्कृतौ भाग्यस्य कर्मणश्च उभयोरपि महत्वं वरीवर्ति। किन्तु प्रधानता तत्र कर्मणो भवति। उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी:। दैवं हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति, इति भावना पुराकालादद्यावधि प्रसृतास्ति भारतवर्षे। वेदभगवानुपदिशति कुर्वन्नेवेह कर्मणि जिजिविषेच्छतं समा:। गीतायाश्चोपदेश: यत् सततं कुरुकर्म त्वं कर्मज्यायो ह्यकर्मण: तस्मात् कर्मण: प्राधान्यं। कर्मानुरूपमेव फलं लभ्यते, संस्कृतेरनुसारं, अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्, इति गीताया: विचार: बहुश: काव्यगेनोल्लिखित:। कर्माणि एव पुनर्जन्म आधृतम् शुभकर्मभि: मनुष्ययोनि: अशुचिभिश्च पशुकीटादियो निरवाप्यते। पुनर्जन्म तु निश्चितमेव "जातस्य हिध्रुवं मृत्यु: ध्रुवं जन्म मृतस्य च" इति गीतावाक्यं तत्र प्रमाणम्।

(5) श्रुतिषु श्रद्धा—भारतीय-संस्कृतौ श्रुतीनामतीव गौरवपूर्णम् स्थानमस्ति। उपरिवर्णित: समस्त: अपि विचारप्रसारो वेदाश्रितो विद्यते। वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' इति वाक्यम् :-

चातुर्वर्ण्यं त्रयोलोका: चत्वारश्चाश्रमा: पृथक।

भूत भव्यं भविष्यं च सर्वम् वेदात् प्रासिध्यति। इति स्मृति वाक्य चात्र प्रमाणम्। भारतीय संस्कृतौ सम्मानिता त्याग भावना तत: विनिसृता "तेन त्यक्तेन भुञ्जीया: मा गृध: कस्यस्विद्धनम्" केवलाद्यो भवति केवलादि: इत्यादि वेदवाक्यानि तां भावनां प्रदर्शयन्ति, यजुर्वेद: यज्ञानां महत्वं प्रकटीकरोति, तच्च स्वीकृत संस्कृतावपि। यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म इति ब्रह्मणवाक्यम् प्रसिद्धानाम् पंचमहायज्ञ रूपे तस्य स्थिति: भारतीय समाजे सर्वदा प्रतिष्ठात्। मातृदेवोभव, पितृदेवोभव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव इति विचारा: यज्ञस्यैव रूपा: वर्तन्ते, धर्मार्थ-काम-मोक्षाणां महत्वं विस्तारश्चापि वेदेनैव ज्ञायते। तस्मादेव श्रुतीनां सर्वोत्कर्ष: संस्कृतौ स्वीकृत:।

(6) समन्वय भावना—भिन्न-भिन्न विचाराणां मतानां मतावलम्बिना विचाराणां समन्वयस्य भावना भारतीयसंस्कृतेरपूर्वा विशेषता वर्तते। समये-समये भारत देशे शक-हूण-दरद-यवन-तुरुष्क-खश-आंगल जातीनां जना: समाययु:। तेषां संस्कृते विचाराणां च सम्मिश्रणं भारतीय-संस्कृतौ समजनि, सर्वेषामेव स्वात्मनि समन्वय: कृत: भारतीय संस्कृत्या। तेषां विचारा:, भाषा वेषभूषा च संस्कृत्या परिवर्तिना। तान् चासौ आत्मसात् कृतवती। तेषां सर्वविध-विशेषता अंगीकृत्य, तेषु सर्वदा महान् प्रभाव: तया जनित;। इयं च समन्वय भावना एव संभवत: भारतीय संस्कृते: सुदृढ़ स्थिते: अविनश्वरतायाश्च मूलम्।

(7) संस्कृते: अखंडता भारतीय संस्कृते: समस्तेऽपि भारतवर्षे समानरूपेण प्रसृता गुणा: तस्या अखडतां प्रदर्शयन्ति। सर्वस्मिन्नपि देशे सर्वे जना: दिवसे वारत्रयं गायत्रीमुपास्ते। विष्णु: शिव पार्वती इत्यादय: सर्वत्र पूजयन्ते। राम कृष्णयो: गुणगानं तयोर्लीलाश्च सर्वत्र समान रूपेण भवन्ति। वेद-रामायण-महाभारत-गीता-पुराण-भागवत-प्रभृतीनां विभिन्न प्रदेशेषु पाठ प्रचलितो। एकस्मिनन्नेव गयातीर्थे सर्वेषां पितृकृत्यानि भवन्ति। एकस्यामेव काश्यां सर्वै: शिवार्चना विधीयते कुरुक्षेत्र-हरिद्वार-प्रयागश्च सर्वेषामेव तीर्थानि समस्त भारते एकमेव गीतागोविन्दं गीयते। कृष्ण कर्णामृतरचयिता कर्णाटकस्य बिल्वमंगल: सर्वेषां स्वीय इवास्ति। महाप्रभु: चैतन्य: सर्वाणि

शास्त्राणि इदं कृष्णामृतं, ब्रह्मसंहितां च दक्षिणदेशादेवानिन्ये। एकमेव दशकर्म समस्त भारते प्रचलितमस्ति।

कश्चिदपि देव: पूज्येत्, चतुर्णाम् धाम्नां अथवा उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम दिशानां चतुरशीतितीर्थानां जलै: इष्टदेवस्याभिषेकं विनास्माकमभिषेककार्यम् न खलु संपूर्यते। शंकराचार्येण सम्पूर्णभारते दशनामीसम्प्रदायस्य स्थापना कृता। प्रत्येकं दिशि चत्वारी मठस्तेन संस्थापिता: ते च जोशीमठ: श्रृङ्गेरीमठ:, द्वारिकामठ: पुरीमठश्च सन्ति।

तान्त्रिकास्तु समस्तदेशे एव एकां जगन्मातरं पुण्यदेहां मत्वा द्वापंचाशत् पीठेषु द्वापंचाशदंगानि मन्वते। एतेषु पीठस्थानेषु हिंगलाज: बलोचिस्ताने, कामरूपश्च आसामप्रदेशे अस्ति। कन्या कुमारीत: ज्वालामुखीपर्यन्तं सर्वत्रैव देव्या अंगानि सन्ति। तस्या देव्या अंखडदेहं किं वयं खंडितं कर्तुम् शक्नुम:। एक एव शिव: एक एव विष्णु भारतस्य चतुर्षु दिक्षु चतुरशीतिक्षेत्रेषु विराजितो वर्त्तते। तन्त्रं कथयति यत् द्वापंचाशात् पीठानि अस्माकं वपूंषि वर्तन्ते। कथं वयं स्वात्मन: खंडितान् कर्तुमर्हमि:

अनेनेदं सिद्ध्यति यत् ये जना: देशे प्रादेशिकताया: प्रचार कुर्वन्ति, ते भारतस्य चिरन्तन-साधनां संस्कृतिं च न विजानन्ति। यद्वा तां प्रति तच्चित्तेषु दया नास्ति।

सारांश :-

संक्षेपतश्चेत् भारतीय संस्कृते: विशेषता: प्रकटीक्रियेरन् तर्हि वक्तुं शक्यते यत् अस्या: धर्म संस्कृति जीवनेषु त्रिष्वपि क्षेत्रेषु समानरूपेण विस्तारो एकत्वस्याभिज्ञानमस्ति। बहुधा पदेनैव एकस्य महिमा प्राप्यते। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति, इति वाक्यं भारतीय संस्कृतेरन्तर्याभि सूत्रमस्ति। समन्वयस्योपलब्धि: हिन्दु संस्कृते: इतिहासस्य राजमार्गो वर्तते। जड़-चेतनस्य सापेक्षिक मूल्यांकनं हिन्दुसस्कृतेर्विशेषता वर्तते। साहित्य-कला-सौन्दर्य-संयमा भारतीय-संस्कृतेरायामा: सन्ति। ऋत-सत्य-धर्म-ब्रह्म-चैतन्यानि अभिन्नानि सर्वोपरि च विराजन्ते। भारतीय संस्कृते: एतेषु अखंडता निष्ठा वरिवर्ति। धर्मस्य जीवनस्य च सम्मिश्रण हिन्दू-संस्कृते: आग्रहस्य विषयो वर्तते। व्यासस्य शब्देषु धारणात् धर्म इत्याहु; धर्मोधारयते प्रजा: अस्य धर्मस्य सर्वोपरि चैतन्यस्य च धरातलमेकमस्ति। धर्म: भारतीय संस्कृते: श्वास: अस्ति।

भारतीयसंस्कृते: इमा विशेषता: विलोक्य समाज-राजनीति-धर्म-दर्शन-कला शिक्षा प्रभृति क्षेत्रेषु प्रवाहिताया: संस्कृते: सरिताया: कमनीयं स्रोत: प्रबन्धेषु प्रदर्शितो वर्तते।

राजकीय नेहरू संस्कृत
कालेज शिमला-4.

दुर्लभोऽभिलेखः

● पृथु राम शास्त्री

काङ्गड़ा-जनपदस्य कटोच्च-राजवंशो विश्वस्याऽस्ति पुरातनतमो राजवंशः। भगवत्या मानस-पुत्रो नृपो भूमिचन्द्र आसीदस्य प्रवर्तकः। महाभारतकालेऽप्यस्य वंशस्य २३४ तमो दुर्योधन सहाय-कोनृप : सुशर्मचन्द्रस्तत्याज प्राणान् रणक्षेत्रे। अतुलवैभव सम्पन्नमिदं राज्य गजनी वास्तव्यो महमूदो वारम्वारं लुलुण्ठः। तेन लुण्ठिता यथेतिहासमतुला सम्पत्तिरेवास्य वैभव-सूचिका।

अस्यैव प्राचीनतमस्य राजवंशस्यैतिह्यभूता वंशावल्यपि सुरक्षिताऽऽसीन्महाराज- संसारचन्द्रस्य सविधे। इङ्गलेण्डदेशवास्तव्यो महोदयो विलियम क्राफ्ट नामा पर्यटको नैजेन चिकित्सा-शास्त्र-ज्ञानेन भृशमतोषयन्महाराजं संसारचन्द्रं ययाचे च तामेव वंशावलीम्। गुणानुरागी कृतज्ञश्च नृपश्च-कार तं सफलमनोरथम्। इत्थं १८२०तमे ख्रीष्टाब्दे महत्त्वपूर्णश्चैकोऽभिलेखो भारतान्निर्गतः, क्वाद्य वर्तते इति न ज्ञायते।

प्रथित यशसोऽस्यैव वंशस्य ४६४तमो (१५२८ तमाद् विक्रमाब्दात् १५६२ तमं यावत्) नृपो धर्मचन्द्रो बभूव। अन्वर्थनामाऽयं धर्मात्मा नृपः सम्पादितवान् सोमयज्ञं निजराज्य काले।

आसन्नाहूतास्तेन नृपेण यज्ञसम्पादनार्थं याज्ञिको विद्वांसो ब्राह्मणाः कान्यकुब्जीया विभिन्न प्रदेशेभ्यः। सति सम्पादिते यज्ञे धर्मप्रचारार्थमिमान् याज्ञिकानवासयदसौ निजे वै राज्ये। सामाजिक्याञ्च वर्णव्यवस्थायां तेभ्यः सर्वोच्चपद प्रदानाय निर्धारितवांश्च नवीनां वर्णव्यवस्था निज राज्यवासिनीनां प्रजानाम्। का जातिः कुतः समागता, कति च सन्तितस्या उपजातयः शाखोप-शाखाश्च, कानि चसन्ति तासां नामोपनामानि, कथञ्चोपनाम्नां प्रवृत्तं प्रचलनम्, कानि च तासां कृत्यानि परम्परागतानि, किञ्चास्ति वैशिष्टयमत्रत्यानां जनानाम्, का चाऽस्ति क्षेत्र सीमेत्यादिकं सर्वमस्यां संकलितं वर्तते।

नृपधर्मचन्द्रेण कृताया वर्णव्यवस्थाया ब्राह्मणवर्ण सम्बन्धिनो भागस्यैकोंऽशोऽत्रास्ति सुरक्षितः। भाषा चास्याऽस्ति उर्दू मिश्रिता लोक भाषा तात्कालिकी हिन्दी। पुनर्लेखितश्चायमभिलेखः स्वनामधन्येन श्रीचन्द्रधर गुलेरिणा। लेखकश्चास्याऽऽसीदालमपुरवास्तव्य श्री वेदबृक्षशङ्कर-नामा कश्चिन्महा भागः। लेखनकालश्चाऽस्ति १९२१ तमे वैक्रमाब्दे कार्तिकमासस्य षोडशो दिवस।

ब्राह्मण वर्ण सम्बन्धिन्या अस्या वर्णव्यवस्थाया अपूर्णप्राय: संस्कृतानुवादोऽप्युपलब्धोवर्तते। कश्चासीदस्यानुवादस्य कर्तेति नोल्लिखितं तत्र। अस्त्यस्याऽपि विशिष्टं महत्वं समाजशास्त्राध्येतृणां कृते, प्रकटयति चायमपि बहून्यविदितपूर्णाणि तथ्यानि, अतोऽत्र सम्पाद्य प्रकाश्यते सभुलब्धोऽश: प्रयतितश्चात्रेमं पूरयितुमन्तिमै: रष्टभि:श्लोकै:।

श्रियै नम:

वन्देऽहं शारदां देवीं श्रीदुर्गाञ्च गजाननम्।
जालन्धरस्य विप्राणां कुर्वे जाति निरूपणम् ॥१॥
भागे पूर्वे त्रिगर्तस्य पीठं जालन्धराभिधम्।
तस्यैव शोभनो भाग: काङ्गड़ा नाम पत्तनम् ॥२॥
तत्र नगरकोटीया ब्राह्मणा निवसन्ति वै।
भट्टेड-पद-वाच्याश्च ह्युत्तमाधम मध्यमा: ॥३॥
यत्पीठं विष्णुना पूर्वं स्थापितं सिद्धिहेतवे।
ऋषिभि देवताभिश्च वर्धितं धर्मकर्मणि ॥४॥
अग्निरूपा च वै जिह्वा यत्र सुन्दर रूपिणी।
ज्वालामुखी महादेवी धर्मार्थकाम मोक्षदा ॥५॥
विद्यते ह सदैवात्र भक्तानुग्रह कारिणी।
यस्या दर्शनमात्रेण पापराशिश्च नश्यति ॥६॥
यस्याश्च दर्शनार्थं वै साधव: सज्जनास्तथा।
दूरतोऽपि समागत्य सदैवायान्ति भूरिश: ॥७॥
यत्रैव कोटकाङ्गड़ा पत्तनं वरिवर्तते।
महाकृति: समानामा भूमिस्तत्र च दार्षदी ॥८॥
विष्णुना यत्र पूर्वं वै जालन्धरशिरस्तथा।
छित्वा प्रस्थापितो यस्मात् कांगड़ाख्यांततो गत: ॥९॥
'कं शिरो दैत्यराजस्य गडित: पतितो भुवि।
स देश: कङ्गड: प्रोक्तो मृतानां मोक्षदो हिय.' ॥१०॥
पाण्डवैर्वै यदा पूर्वं दुर्गं (किला)-कटोच्च निर्मितम्।
ततोवैं कोट काङ्गड़ा नाम तस्य प्रतिष्ठितम् ॥११॥
पूर्वा भूमिश्च तत्रत्या करण्डनां सरूपिणो।
तत्रत्या ब्राह्मणा सर्वे कुरडुजाति विश्रुता: ॥१२॥
दुर्गं कोटस्य निर्माणे कुरडुजातिब्राह्मणा:।
उद्वासिता यतो यस्या: पौरोहित्यश्च लेभिरे ॥१३॥
कटोच्च क्षत्रियाणाञ्च तथाऽन्येषां नृपाज्ञया।
पौरोहित्यंञ्च तेषां वै प्राप्तं जीविकयान्वितम् ॥१४॥

तस्मिन्नेव महादुर्गे कांगड़ाकोट विश्रुते।
(श्री) अम्बिका नाम सा देवी राजते सर्वसौख्यदा ॥१५॥
ततश्च उत्तरे भागेऽर्धगव्यूतिप्रमाणके ।
वज्रेश्वरी महादेवी विख्याता लोक विश्रुता ॥१६॥
तस्यैव पश्चिमे भागे जयन्ती लोकतारका ।
वर्तते च महादेवी गिरिशिखर संस्थिता ॥१७॥
जालन्धरस्य पूर्वे तौ वैद्यनाथेति विश्रुतः ।
वर्तते च महादेवो विख्यातः सर्वदैव हि ॥१८॥
तत्रैव तारिणी दुर्गा विनोदातटवासिनी ।
क्षीर गङ्गाऽपि तत्रैव सर्व-पापापनोदिनी ॥१९॥
कांगड़ा दुर्गतो दूरे क्रोशे चाष्टमिते तथा ।
नन्दिकेश्वर नाम्ना वै महादेवोऽपि विश्रुतः ॥२०॥
यस्य मूर्धनि पाषाणशिला वै संस्थिता स्वयम् ।
तस्यैव वाम-पार्श्वे च चामुण्डा त्रिपु विश्रुता ॥२१॥
वर्ततेऽद्यापि सा देवी धर्मकामार्थ-दायिनी ।
नन्दिकेश्वर नाम्ना तत्तीर्थं परम पावनम् ॥२२॥
बाणगङ्गा क्षीरगङ्गा विनोदा निर्गुणा तथा ।
विपाशा च महानद्यः सन्ति जालन्धराभिधे ॥२३॥
जालन्धरे च पीठेऽस्मिन् सर्वतीर्थमयं जलम् ।
देवरूपा हि पाषाणाः नरा नैव च निर्गुणाः ।२४॥
द्विजातयश्च येचात्र तथैवाऽन्ये बिजातयः ।
मन्त्र-यन्त्रौषधीनां वै प्रभावज्ञान-संयुताः ।.२५॥

क्रमशः

साधु आश्रम होशयारपुर

हिन्दू संस्कृति

● आचार्य रामानन्द

"हिन्दूपनम्" इति-अधिकृत्य ये प्रवर्तन्ते त एव "हिन्दुत्व"- वाचका भवन्ति । "हिन्दुत्व"-अभ्यन्तर एव हिन्दुधर्मः, हिन्दुमर्यादा, हिन्दु. संस्कृतिः, हिन्दु सभ्यता, हिन्दु-परम्परा, हिन्दु-कलादीनां समावेशो भवति । "किन्नाम हिन्दुत्वम्" इति जिज्ञासा परम्परायां कोऽयं "हिन्दु." इति प्रश्नः प्राश्निकस्य चेतस्युत्पद्यते । अत्रोच्यते :—

"यः श्रुति-स्मृति पुराणेतिहास प्रतिपादितकर्मणामाश्रित्याभ्युदयाय यतते स एव "हिन्दु" रिति पदवाच्य : ।"

अथवा

श्रुति-स्मृतिमूलकाभिः समाज-शासन-धर्मव्यवस्थाभिः स्व-जीवनस्य समस्त-क्षेत्रेषु ऐहिक पार-लौकिकाभ्युदयाय यतते स एव "हिन्दु" रित्याभिधीयते ।

वैदिक सिद्धान्तमधिकृत्य मानव-जीवनस्य समस्तक्षेत्राणां विविध-व्यवस्थानां सक्रियरूपं वर्णाश्रम धर्म व्यवस्थाया मुपलभ्यते, अतः

वर्णाश्रमधर्ममनुसृत्याचारविचारै. स्व-जीवन यात्रायै प्रयतते स एव "हिन्दु" रिति संज्ञाम्प्राप्नोति ।

अथवा

'ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-इत्येतेषु चतुर्षु वर्णेषु जायमानो वेद शास्त्राण्येव नः "धर्मग्रन्था;" इति मन्यमानो हिन्दु रित्यभिधानं लभते ।

अथ कोऽयम् हिन्दु रिति जिज्ञासायाम् ? श्रीमता महात्मना विनोबाभावेनाऽप्युक्तम्:—

यो वर्णाश्रम निष्ठावान् गोभक्तः श्रुतिमातृकः ।
मूर्ति च नावजानाति सर्वधर्मसमादर :॥
उत्प्रेक्षते पुनर्जन्म तस्मान्मोक्षणमीहते ।
भूतानुकूल्यं भजते स वै हिन्दु रितिस्मृत ॥

हिंसया दूयते चित्तं तेन "हिन्दु" रितीरित: ॥

अतोऽखिलाभिदुं भावनाभि: पृथक् "हिन्दुत्वम्" एव हिन्दूनां धर्मो भवितव्य: । हिन्दु रिति-शब्दस्य परिभाषा विविध रूपेण शास्त्रेषु प्रतिपादिता विद्यते, परञ्च सर्वासु परिभाषासु प्रामाणिका सरल-भाषा-विभूषिता च परिभाषा भारतवर्षीय हिन्दुमहासभायां वीरसावरकरेण प्रतिपादिता वर्तते:

आसिन्धो: सिन्धु पर्यन्ता यस्य भारत भूमिका ।
पितृभू: पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरितिस्मृत: ॥

अत्र साम्प्रदायिकताया: लेशमात्रमपि न विद्यते । स्पष्टञ्चोद्घोषयते यत्-स एव हिन्दु, य इमां भारत भूमिं पितृभू : पुण्यभूश्चाभिमन्यते । वेदमनुसरतस्योद्घोषणैवभविष्यति—

"माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:" इति ।

स्वीकरणीया आदरणीया च राष्ट्रियता देशभक्ति चास्मिन्: मन्त्रवाक्ये निहिताऽस्ति । ये लोका इमां भारत भूमिं पितृभू: पुण्यभूश्च मंस्यन्ते ते कदाप्यत्र नैव विद्वेष परस्पर करिष्यन्ति अपितु राष्ट्राय सर्वस्वं समर्पयिष्यन्ति ।

पुण्य-भुवोऽर्थस्तु- तस्यास्तीर्था: महापुरुषाश्च ये अस्यां जन्म लेभिरे । तेषां चेतंसि एते भावा भवितव्या:—

"फिर जन्मे हम इसी भूमि में,
यही भाव उर धरे मरे ।।

नतु—

" मेरे लैला ! मदीने बुला ले मुझे ।"

एकस्य हिन्दोस्तीर्था काशी मथुराप्रभृतयो भविष्यन्ति न तु मक्का फिलिस्तीन प्रभृतय: । हिन्दु: पवित्रं राष्ट्रिय विचार धारासम्पन्नो भविष्यति ।

बृहस्पति- आगमे "हिन्दुस्थानस्य" का सीमा भविष्यति ? इत्यत्रैवम् सीमा निर्धार्यन् "हिन्दु:" रिति शब्दं भौगोलिक: प्रत्याहारज: स्वीकुर्वाण एवमुच्यते:—

"हिमालयं समारभ्य यावदिन्दुसरोवरम् ।
तं देव निर्मितं देशं "हिन्दुस्थानं" प्रचक्षते ॥

अर्थात् "हिमालय" पर्वतस्य हि. शब्दोपलक्षितस्यान्तिम स्थलमारभ्य "इन्दु"-सरस: (कुमारी-अन्तरीपस्य) "न्दु" शब्दोपलक्षितस्यान्तिमप्रदेशस्य समाप्ति पर्यन्तस्य देव निर्मितस्य स्थलस्य संज्ञा हि+न्दु स्थानमिति प्रचक्षते ।

अत एव नानाधर्मसमाविष्टस्य "हिन्दु" रिति शब्दस्य लक्षणं कुर्वता महाभागेन लोकमान्य तिलकेनोक्तम्: —

"प्रामाण्य बुद्धिर्वेदेषु नियमानामनेकता ।
उपास्यानामनियमो हिन्दुधर्मस्य लक्षणम् ।।

हिन्दुरिति पदवाच्य: स एव प्रभवति य:—

'श्रुति स्मृत्यादिशास्त्रेषु प्रामाण्य बुद्धिमवलम्ब्य श्रुत्यादि प्रोक्ते धर्मे विश्वासं निष्ठां च य: करोति स एव वास्तव हिन्दुपदवाच्य: ।"

एवञ्च:—

'श्रुत्यादि प्रोक्तानि सर्वाणि दूषणानि हिनस्तीति हिन्दु: ।'

प्राचीन भारतीय शास्त्रेषु विविधरूपेण 'हिन्दु' रिति शब्दस्य व्यवस्थैव क्रियते :—

मेरूतन्त्र एवमुक्तम् : —

'हिन्दूधर्मप्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिन: ।
हीनं च दूषयत्येव 'हिन्दु' रित्युच्यते प्रिये ।।

शार्ङ्गधरपदव्यान्तु :—

"यवनैरवनि: क्रान्त्वा हिन्दवो विन्ध्यमाविशन् ।
बलिना वेदमार्गोऽयं कलिना कवलीकृत: ।।

एतदेवानुसर्ता कलिकापुराण एवभुक्तम् :—

'बलिना कलिनाऽऽच्छन्ने धर्मे कवलितेकलौ ।
यवनैरवनि क्रान्ता हिन्दवो विन्ध्यमाविशन् ।।

शब्दकल्पद्रुमकोषे तु इत्थमुक्तम् :—

'हीनं दूषयति इति हिन्दु: ।'

'पृषोदरादित्वात् साधुजातिविशेष:' इति ।

आचार्य पाणिनिनातु—

'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' इत्यनेन सूत्रेण 'हिन्दु, रिति शब्द: साधित: । तत्र 'हिन्दु' रिति जातिविशेष: प्रतिपादित: ।

अद्भुतरूपकोषेतु :—

'हिन्दुर्हिन्दूश्च पुंसि द्वौ दुष्टानां च विघर्षणौ'

हेमन्तकविकोष एव मुक्तम् :—

'हिन्दुर्हिनारायणादिदेवता मक्त, ।'

रामकोषेऽप्युक्तम् :—

'हिन्दुर्दुष्टो न माति नानार्यो न विदूषक; ।

सद्धर्मपालकोविद्वान श्रोतधर्मपरायणः ।।

परिजातहरणनाटके त्वेवमुक्तमस्ति :—

'हिनस्ति तपसा पापान् दैहिकाम् दुष्टमानसान् ।

'हेतिभिः शत्रुवर्गं च स हिन्दुरभिधीयते ।।

प्रभाकरश्रीधर रोडमहाभागेन "बृद्धस्मृति' इति नाम्ना 'हिन्दु' रित्यस्य साधु लक्षणमुद्धृत मेवम् :—

'हिंसया दूयते यश्च सदाचारणतत्पर: ।

वेदगोप्रतिमासेवी स हिन्दुमुखशब्दभाक् ।।

तथा च—

गोषुभक्तिर्भवेद्यस्य प्रणवे च दृढामतिः ।

पुनर्जन्मनि विश्वास: स वै हिन्दुरीति स्मृतः ।।

नाना धर्मछिन्नां जाति मेकसूत्रेऽवच्छिन्नकुर्वता कविवरेण माधवदिग्विजय इत्यमैकं सूत्रं तत्र प्रतिपादितम् :—

ओंकारउ्ल मन्त्राढय: पुनर्जन्मदृढाशय: ।

गोभक्तो भारतगुर्हिन्दुर्हिसनदूषक: ।।

अत्रैव भिन्ना-छिन्ना सर्वे सम्प्रदाया: व्यापकरूपेण 'हिन्दु' रिति सूत्रे निबद्धा आसन। निबद्धे सति एतेषां संघ: एकाया राष्ट्रियताया प्रादुर्भावं करोति—तदेव 'हिन्दुत्वम्'

किन्नाम हिन्दुत्व मिति जिज्ञासायाबुद्घोषयते "येन समस्त-भारतीय समाज एकस्मिन् सूत्र आबद्धस्तदेवं हिन्दुत्वम् ।'

धर्मघटक विभक्ता भारतीया निज 'पन्थ' हेतु 'पन्थ' बिनाशोन्मुखी विद्यते इति घोषणां कृत्वा 'बोद्ध धर्मस्य 'नाम्नि बौद्धा एव, सनातन धर्मस्य नाम्नि सनातनिन एव इकत्रिता भवितुमर्हन्ति परञ्च 'हिन्दुत्वस्य' नाम्नि सर्वे संघीभूता प्रभवन्ति । तेषां उद्घोषणैषा ऋगिति भविष्यति :—

तं देशं पुण्ययज्ञेषं यत्र देवा सहाग्निना'

यत्र प्रत्यहं यज्ञो भवति सो देश तद्राष्ट्रं 'पुण्यम्' इति मन्यामहें, तेषां सिद्धान्तं एषा ऋगू भविष्यति

'तन्तु तन्वन् रजसो आनुमन्विहि,

ज्योतिष्मतो पथों थिया कृतान् ।

अवुल्वणं वयत जोगुवामपो,

'मनुर्भव' जनया दैवं जनम् ॥

अस्माकं सिद्धान्तो 'अनुर्भव' इत्येव भविष्यति। इत्थम्भावाभिभूता व्यासमहाभागा भविष्यत्पुराणे हिन्दुस्थानस्य चरित्रणं एवं रूपेण प्रतिपादयन्ति -

ग्रामे ग्रामे स्थितो देवो देशे देशे स्थितो मख:
गेहे गेहे स्थितं द्रव्यं धर्मश्चैव जने जने ॥
सिन्धुस्थानमिति ज्ञेयं राष्ट्रमार्यस्य चोतमम् ॥ इति

हिन्दूनामादर्शा एता अथर्ववेदस्यर्चा: भविष्यन्ति :—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि: व: ।
अन्यो अन्यमभिहयत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥
अनुव्रत: पितु: पुत्रो मात्रा बदतु संमना: ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवान् ॥
मा माता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत्स्वसा ।
सम्यच सव्रता भूत्वा वाचं वदतु भद्रया ॥
समानीप्रया सह वोऽन्नभागा:
समानं योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्नि सपर्यतारा ।
नाभिमिवाभित: ॥

इत्यो३म् शम्

प्राचार्य राजकीय नेहरू
संस्कृत महाविद्यालय शिमला

संस्कृतौ विद्या

● आचार्य मदन मोहन शर्मा

भारतीय संस्कृतौ विद्याया: सर्वाधिकं महत्वमस्ति । शिक्षा सूचक: विद्या शब्द: शास्त्रेपु बहुश: समागत: । 'विद्यां अवतारिता' इति पदेन प्रतीयते यत् तस्मिन् समये अपि सर्वविद्यानामवतार: भारते अभवत् । सर्वक्षेत्रेषु विद्याया: महान् प्रचार: आसीत् । शिक्षा खलु मानवजीवनाय हित-कारिणी अनिवार्या च इति मत्वा ऋषिभि: ब्रह्मचर्याश्रमे विद्योपार्जनस्योपदेश: कृत: तदनन्तरं चापि 'स्वाध्यायान्मा प्रमद:' इति तैरूपदिष्टम् । ऋषिमुनिभि: विद्वद्भिश्च विद्याया: मुक्तकण्ठं प्रशंसां विधाय तन्महत्वं प्रदर्शितम् । विद्या शून्यो नर: पशुतुल्यो उच्यते, शुन: पुच्छमिव तज्जीवनं व्यर्थं प्रतिपादितम् ।

विद्याया: संख्या विषये न कश्चिदुल्लेख: किन्तु पौन: पुन्येन प्रयुक्ता विद्या शब्दस्तद्बहुत्वं साध-यति । उपनिषत्सु चतुर्दशविद्यानां वर्णनं वर्तते ।

आश्रमा: भारतीय संस्कृते जन्मदाता सन्ति । महाकवि: रवीन्द्रनाथो लिखन्ति 'भारते सर्वाधिकमाश्चर्यमिदं खल्वस्ति यदत्र वनानि न च नगराणि, सर्वोत्कृष्ट संस्कृते: स्त्रोतांस्यभवन् । वनेषु चैतेषु निवसतां मुनिवराणामाश्रमा एव प्राधान्येन विद्याकेन्द्राण्यासन् प्राचीन भारते । यतोहि राम-कृष्ण-सुदामा-भरतप्रभृतय: वनेष्वेव विद्याभ्यासमकार्षु: तथा अनेकेषां राजकुमाराणां शिक्षा दीक्षा वनेष्वेवाभवत् ।

बौद्धानां जैनानां च मठा अपि बहव उल्लिखिता सन्ति । यत्र गुरु शिष्याणां निवासस्य स्पष्टं सूचना प्राप्यते । तेषु चापि विविधप्रकारा शिक्षा दीयते स्म । राज्ञां प्रासादेष्वपि विद्या दीयते स्म । बहवस्तत्र वर्तन्ते उल्लेखा: यै प्रतीयते यत् गुरव: प्रासादेष्वागत्य शिक्षां ददु: ।

राज्ञ: जलौकस्य गुरु: अवधूत: अभवत् यो नै प्रासादे एव राज्ञे ज्ञानोपदेशं ददौ । प्रासादे निवसता एव राज्ञा नन्दि पुराणमाकर्णितम् । हर्षं स्व प्रसादे एव स्व शिष्याय कनकाय संगीतशिक्षां ददौ ।

धनिकानां बालकानां शिक्षा गृहे एवाभवत् । तत्रैवागत्य शिक्षकास्तान् शिक्षयन्ति स्म । मेरुवर्धन मन्त्रिण: बालस्य शिक्षा गृहे एवाभवत् । मन्दिरेष्वपि शिक्षा दीयते स्म: ।

विद्यादाता शिक्षक कथ्यते स्म । स एव गुरु उपाध्याय आचार्य ज्ञानोपदेशकृत् प्रभृतिभिर्नामभिः उल्लिखितः । गुरुः ज्ञानोपदेशस्य च कर्त्ता भवेत् । उभयञ्च तदैव सम्भवति यदा स दिव्यायाः वाग्देव्याः शारदायाः अनुग्रहभाक् भवेत् । सरस्वत्या अनुग्रहश्च तदुपासनया एव प्राप्तुं शक्यते । तच्चानुग्रहं प्राप्यैव गुरुः उदग्रप्रभावो भवति । सर्वत्र च सम्मानं लभते । एतेन चेदं निर्णीतं यत् ज्ञानदाता पूर्वं तावत अधीत सर्वशास्त्र स्यात्. तदनन्तरं संगृहीतं ज्ञानं सामान्य जनेषु प्रसारयेत् । स्वयं यदि स अज्ञानी अल्पज्ञो वा भवेत्तर्हि स क्षीण प्रभावः अल्पप्रभावः स्यात् । उपदेश पदेन चरित्र शिक्षापि संकेतिता विद्यते । दृढ़चरितो जन एव उपदेश दातृपदं प्राप्तुम् र्हति । तत्पदं च प्राप्तु गुरुः वेद-उपनिषद-रामायण-महाभारत पुराण स्मृति गीतादिग्रन्थान अधीयीत, चरित्रं च सुदृढं कुर्यात ईत्थ च गुरुः उदात्तगुणः, गम्भीरः शास्त्राचार ज्ञानवान् प्रभावशाली शीलादियुक्त. च स्यादिति निश्चीयते । तदैव सः वास्तविक आचार्यः भवितु शक्नोति । विद्या प्रदानं धर्मचरित्रोपदेशश्च गुरो प्रधानं कर्तव्यमस्ति । अस्मिन कर्तव्यपालने एव तज्जीवनादर्शो निहितः खलु । चन्द्राचार्य-अवधूत उग्रप्रभृतयः शिक्षकाः एतादृशाः एव आदर्श शिक्षका अभवन् । विद्यायां कृतभूरि परिश्रामा एव ते ज्ञानं प्रसारयामासुः ।

समाजे शिक्षकस्य गौरवपूर्णं निरतिशय सम्मानपूर्णं च स्थानमासीत । महाकवि कालिदासः सूर्येण समं गुरोः तुलना विधाय सूर्यवत् तस्य पूज्यस्थानं प्रतिपादयति । यथा खलु सूर्यः तमो विनाश्य स्वालोकेन सुप्तं जगदुदबोधयति, तथैव गुरुः अज्ञान तमो छित्वा मनुष्याय नवीन दृष्टिददाति । गुरव अपिमन्त्रीपदे प्रतिष्ठाप्यन्ते स्म राजभिः समानाधिकारस्तेभ्योऽसीत । अतः गुरो सम्मान स्पष्ट एव । गुरुणां निवासस्य व्यवस्था राजभिरेव व्यधायि । नासीत तत्कृते निश्चित किंचित वेतनं, स तु यद्धन ययाचे तत् प्राप । स्वयमपि राजा गुरुभ्यः हेमरत्नादिराशि ददौ । वस्तुतः गुरुस्तु शिष्यस्य भक्त्या एव प्रमुदितः वभूव । भक्तिमेव च गुरु दक्षिणां मेने । राजसभायां विद्वान् गुरु सम्मानं उच्चासनञ्च प्राप ।

छात्र एव विद्यार्थी निगद्यते स्म । तस्य गुणेषु विनम्रता सद्व्यवहारश्च आवश्यको मन्यतेस्म आश्रमे निवसन ब्रह्मचारी छात्र दण्डं दधौ । फल पुष्पैरेव स्वजीविकामचालयत । छात्रा गृहस्थेभ्य भिक्षामानीय गुरुभ्यः ददुः पुनश्च तत् एव भोक्तुं किंचित प्रापुः । छात्राणां दिनचर्या सुनिश्चितासीत् प्रातरुत्थाय गुरुवन्दनं विधाय शौचादिकार्याणी सम्पाद्य ते सन्ध्यावन्दनादिकमकार्षुः । ततश्चाध्ययनं चक्रुः गुरुमुखात् । सर्वस्मिन् दिवसे विबधं शिक्षणं प्राप्य सायंकाले भिक्षाटनं चक्रु । सूर्यास्तमन-वेलायां सन्ध्यादिकमकार्षुं । गुरोः सेवा आज्ञापालनं छात्रस्य प्रधान कर्तव्यमगण्यत ।

अध्ययनस्य सर्वान विषयान विद्यापदेन एव अभिधीयते । शास्त्रेषु विद्या क्वचित् त्रिविधा, क्वचित चतुर्धा कुत्रचित् चतुर्दश प्रकारका निगदिता । त्रयी विद्यायां वेद-वार्ता-दण्डनीतिश्च गण्यते वेदपदेनैव छन्दो-मन्त्र-निरुक्त-ज्योतिष-व्याकरण.शिक्षा ब्राह्मण उपनिषद-आरण्यकप्रभृतयः गण्यते । उपवेदेः धनुर्वेदे:, आयुर्वेदे स्मृतिशास्त्रम्, इतिहासः, काव्यपुराणं च सर्वमपि संगृह्यते । वार्तायां कृषि-व्यापारौ दंडनीतौ च राजनीतिः समायाति । दण्डनीतावपि सम्भवतः कौटिल्यार्थ शास्त्रों, कामन्दकस्यनीति

शास्त्रं उशनसः सूत्राणि च आसन् चतुर्विधायां विद्यायान्तु आन्वीक्षिकी-वार्ता-त्रयी दन्डनीतिश्चायान्ति यथा चाह् मल्लिनाथ:

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती ।
एता विद्याश्चतस्त्रस्तु लोकसंस्थिति हेतवः ।।

आन्वीक्षिकी विद्यायां दर्शनं तर्कश्च, त्रयी विद्यायां वेदाः वेदांगाश्च, वार्तायां व्यापार: दण्ड-नीतौ च राजनीतिरित्येवं परिगण्यन्ते। कौटिल्यमतानुसारं अन्वक्षिक्यां सांख्य योगी लोकायतदर्शनं चायन्ति ।

वेद शब्दस्य नाम्नोल्लेख:-श्रुति आम्नाय पदेन कविनाकृत. ऋग्वेदस्य उदातानुदातादि स्वराणां संकेत. कविना कृत: : वेदेभ्य आगमशब्द: प्रयुज्यते स्म । बौद्धा: वेदानां प्रबला विरोधिन; विखंडकाश्चासन्निमति प्रसिद्धम् । वेदेभ्यस्तेषां विरोधस्योल्लेख: 'आगमद्विष: 'पदेन वर्तते ।

उपनिषद अपि नाम्नोल्लेखो वर्तते । उपनिषदां परमतत्वस्य आत्मन: परमात्मन: जोवस्य च संकेत: बहुश: समायात: । एकस्मिन्नेव पद्ये गीताया उल्लेख आस्ते । भक्ति-कर्मयोग-अवतार क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-ज्ञान प्रभृत्य: गीताया विषया:, सिद्धान्त प्रतिपादक: शब्दाश्च पौन: पुन्येन अनेकत्र शास्त्रेषु विद्यन्ते । ज्योतिशास्त्रं खलु महत्वपूर्ण अध्ययन-विषय आसीत् । विद्वद्भि बाराहमिहिरस्य ज्यौतिषसंहिताया: केषांचित् सिद्धान्तानायुल्लेख: कृत: अस्ति । व्याक्रियन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणं व्याकरणस्य संस्कृत भाषाया ज्ञानेसर्वाधिकं महत्वपूर्णं स्थानमस्ति । पणिने: व्याकरणस्स महा-भाष्यस्य चन्द्राचार्यादिनिर्मितस्य व्याकरणस्य चापि उत्कृष्टं स्थानमस्ति ।

पुराणं खलु पंचमो वेद इति विद्वांसो निगदन्ति । भारतीय संस्कृतो पुराणानां गौरवपूर्णं स्थानमस्ति । सर्वकालेषु येषामध्ययनमपि भारते अभूत् ।

रामायणं तत्कथा च समस्त भारतवर्षे प्रथिता । पुराकालादद्यावधि सोत्साहं सोल्लासं च भारतदेशे रामायणधीयते । तदध्ययनं पुण्योत्पादकं चामन्यत ।

एकस्मिन्नेव दिवसे तस्य पाठेन पापशान्ति: सम्भवतीति पद्येनैकेन ज्ञायते । महाभारतस्यापि घटनाना शतश: संकेता तत्प्रधान पात्राणाञ्च पौन: पुन्येनोल्लेखा: तस्य प्रचारं साधयन्ति ।

एतदतिरिक्तं मन्त्रविद्या, मणिविद्या, रसविद्या, पौंश्चलीयविद्या, शकुन विद्या, स्तोत्रविद्या, आयुर्वेद:, हयविद्या, स्वरोदयशास्त्रं, योगविद्या, व्यायाम विद्या, शब्दविद्या, अभिचार विद्या, विविध भाषाज्ञानं प्रभृतय; विद्य' अपि भारते प्रचलिता आसन् ।

इत्यञ्च सिद्धं यत् भारतवर्षे विद्याया अनेके विषया अधीयन्तेस्म ।

शिक्षा क्षेत्रे भारतवर्षं सर्वदेशानामग्रगण्यमासीत् । सहस्त्रश: विदेशिनों विद्यार्थिन विद्याला-भायात्र समागच्छन् । विद्याया सर्वक्षेत्रेषु भारतवर्षं संसारस्य गुरुरासीदिति सगर्वं वक्तुमनुमातुं च वयं शक्नुम: ।

राजकीय नेहरू संस्कृत
महाविद्यालय शिमला

वेदानाम् पौरुषेयत्वम्

—बलिराम शर्मा शास्त्री

विद् सत्तायाम्, विद्ज्ञाने, विद् विचारणे विद्लृलाभे एभ्यश्चतुर्भ्योधातुभ्यो वेद शब्दस्य निष्पत्तिर्भवति। वयं वेदं चतसृषु संहितासु विभक्तं पश्याम; संहिता नाम संग्रहो ग्रन्थः ऋक् संहिता यजुः संहिता, सामसंहिता अथर्वसंहिता च अतः वेद विषये मन्त्र संहितामधिकृत्य चत्वारोवेदा इति व्यवहारो भवति। अथच वेदत्रयी कथने हेतु- यदावयं तत्तद् संहितागत भाषा रचनामभिलक्ष्य विचारयामः तदा मन्त्र रचना त्रिप्रकारकाऽस्ति। वृत्तबद्धरचना, गद्य बद्धरचना, गीतिबद्धा रचना च। पद्यरूपोमन्त्र ऋक, गद्यरूपोमन्त्रो यजुः गीतिरूपोमन्त्रसामः, यजुर्वेदस्तु गद्यपद्योभयात्मकावाद ऋकयजुषोर्मध्ये ऽन्तर्भवति। अतस्त्रयोवेदा चत्वारोवा इति नास्ति कश्चिद्विरोधः। परमात्मनो-निश्वसितं वेदाः. केचिदेवं मन्यन्ते यद् वेदा पुरुष निर्मिता यतोहि वेदेषु तत्तत्कर्तृभूतानां पुरुषाणां नाम सम्बन्ध प्रत्यक्षमवलोकयामः। तद्यथा-काठक कौथुमं। तैत्तिरीयमित्यादिरूपेण वेदेषु कठकुथ तित्तिरि प्रभृतीनां पुरुषाणां नामापलम्भ इति तन्निर्मिता वेदा इति सिद्धमेव। अथच "अनित्य दर्शनात् (पू० मी० (1/1/28) नित्या जननमरण वन्तो ववरादयो वेदे श्रूयन्ते, यथा ववर त्रावाहिणि-रकामयत ववर कश्चित् पुरुषविशेषः अत वेदस्तत्परवर्तिना केनापि पुरुषेणनिर्मितः।

परंच वेदा वस्तुतोऽपौरूषेया। तत्तद् वेद शाखासु तत्तकाठादीनां यो नाम सम्बन्ध स तत्कर्तृत्वेन विद्यते, अपितु तद् व्याख्यतृत्वेनतु वर्तते। अर्थात् कठादयो वेदस्य व्याख्यातारोन-तुकर्तारः ववरादयोऽपि न खलु पुरुषविशेषा अपितु नित्य पदार्था सन्ति। ववरो वरवर शब्द कुर्वन् वायुरेवाभि प्रेतः। ऐतिहासिक पुरुषाणां नामोपलम्भेऽनापि वेदानां पौरुषेयत्वं न सिध्यति, यतोहि वेदानांज्ञानं त्रिकालाबाधितंभवति।

भूतं भव्य भविष्यञ्च सर्ववेदात प्रसिध्यति।

आपिच "कृते चाविनियोग स्यात्कर्मण समत्वात" (पू० मी० 1/1/32) यदि ज्योतिष्टोमादि-वाक्यं केनचित्पुरुषेण क्रियेत तदा तदानीं कृते तस्मिन् वाक्ये स्वर्ग साधनत्वे ज्योतिष्टोमस्य विनि-योगो न स्यात्, साध्य साधन भावस्य पुरुषेण ज्ञातुमशक्यत्वात। लोके वयं पश्यामोयत् फलं प्राप्य दृष्टा वा मनुष्य स्तत्प्राप्त्यर्थमन्यं विनियुङ्क्ते किन्तु ज्योतिष्टोमेन स्वर्ग प्राप्तिरिति पुरुष कर्तृकेषु वेदेषु न सम्भवति। पुरुषेण स्वर्ग एव न दृष्टः इति कथमसौवराकोऽन्य विनियुञ्जीत ज्योतिष्टोमं

कुरु स्वर्ग प्राप्स्यसि तस्माद् वेदा अपौरुषेयाः। युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः। लेभिरे तपसापूर्वमनु ज्ञाता स्वयं भुवा (महाभारत वन पर्व) मनुनापि कथितम्।

अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयं भुवा (मनुस्मृतिः १।२६) अग्नि वायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् दुदोहयज्ञसिद्धयर्थं मृग यजु सामलक्षणम्। (मनुस्मृति १।२३)।

यद्यपि अपौरुषेये वेदे कर्तारो न सन्ति तथापि कल्पादौ विश्वेश्वरानुग्रहेण मन्त्राणां लब्धारो-कृदित्युच्यन्ते, (तैत्तिरीय आरण्यक सायणभाष्य ४/११ बृहदारण्य कोपनिषदि—अस्यमहतो भूतस्य निश्वसितमेतदृग वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्वांगिःरसः। अतः वेदा अपौरुषेया एव सन्ति।

राजकीय नेहरू संस्कृत महाविद्यालय
शिमला-4

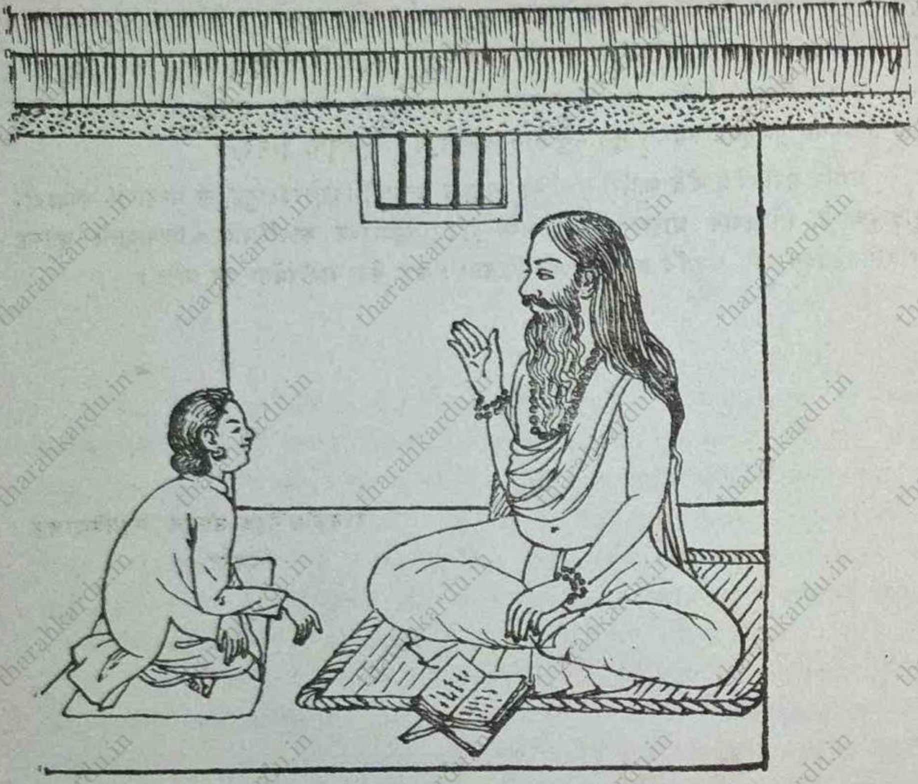

सूक्ति सुधा

● राका जोशी

हस्तस्य भूषणं दानं
सत्यं कण्ठस्य भूषणम्
श्रोत्रस्य भूषणम शास्त्रम्
भूषणैः किं प्रयोजनम्

हाथ का भूषण दान देना, कण्ठ का भूषण सत्य बोलना, कान का भूषण शास्त्र एवं अच्छी बातें सुनना, तो मानव को, अन्य भूषणों की क्या आवश्यकता,

राष्ट्रस्य चित्तं, कृपणस्य, वित्तं,
मनोरथं दुष्ट हृदयन्तराणाम् ।
स्त्रीणञ्चरित्रं, पुरूषस्य भाग्यं
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ।।

अर्थ : प्रजाओं के चित्त का, कृपण मनुष्य के धन का, दुर्जन मनुष्य के मनोरथ का स्त्रियों के चरित्र का और पुरुषों के भाग्य, इनको देवता तक नहीं जानते औरों की तो बात ही क्या ?

रिक्त पाणिर्न पश्येत, राजानं देवता गुरूम् ।
दैवज्ञं भिषजं मित्रं फलेन फलमादिशेत् ।।

राजा, देवता, गुरू, ज्योतिषी, वैद्य और मित्र के यहाँ खाली हाथ नहीं जाना चाहिए । क्योंकि फल ले जाने से फल मिलता है ।

नारीकेल समाकारा, दृश्यन्ते ही सुहृद्धजनाः
अन्ये बदरिकाकाराः बहिरेव मनोहराः ।

सज्जन पुरूष नारियल के समान होते हैं । बाहर से तो कोई चटक मटक नहीं होती, परन्तु अपने भीतर सार को लिये होते हैं । परन्तु दुष्ट पुरुष बेर के समान होते हैं । बाहर से देखने के लिए सुन्दर और भीतर से कठोरता को लिए होते हैं ।

स्नेहच्छेदोऽपि साधूनां, गुणाः नायान्ति विक्रियाम् ।
भङ्गेऽपि हि मृणालानामनुबन्धन्ति तन्तवः ।।

सज्जन पुरुषों की प्रीति मृणाल (कमल नाल के) समान होती है । टूट जाने पर भी सज्जनों की प्रीति में विकार नहीं आता । जैसे कि मृणाल के टूट जाने पर उसके सूत (तार) उसके संग लगे रहते हैं ।

आकारेरिङ्तैगत्या, चेष्टया भाषणेनच ।
नेत्रवक्त्र विकारेण लक्ष्यते ऽन्तर्गतं मनः

आकार से, इशारे से, गमन से, चेष्टा से, कहने से, आंख और मुख के विकार से मन की बात पहचानी जाती है ।

दूरादेवक्षणं, हासः, सप्रेश्नेष्वादरो भृशम् ।
परोक्षेऽपि गुणश्लाघा, स्मरणं प्रिय वस्तुषु ।।

दूर से ही देख कर हंसना, कुशल प्रश्न पूछने पर अतिशय आदर करना, पीछे से भी गुण प्रशंसा करना और उत्तम वस्तु देखने पर उसकी प्रशंसा करना यह अनुकूल राजा के लक्षण होते हैं ।

कालयापनमाशानां वर्धनं फलखण्डनम् ।
विरक्तेश्वर चिन्हानि, जानीयात मतिमान्नारः

समय टालना, आशा बढ़ाना, फल का खण्डन करना, बुद्धिमान् पुरुष को ये सब प्रतिकूल राजा के लक्षण समझ लेने चाहिए ।

प्री० मंडीकल
एम. एल. एस. एम.
कालिज सुन्दर नगर,

प्रहेलिका:

● राका जोशी

वृक्षाग्रवासी न च राज हंसो
नाम्नानरो वै न च राजपुत्र:
सुवर्णकायो न च हेमधातु:
तृणं च शय्या न च राजयोगी,

अर्थात् वृक्षों में रहने वाला है, परन्तु राजहंस पक्षी नहीं है। नाम से नर है परन्तु राजपुत्र नहीं है। सुवर्ण के सदृश कान्ति है पर सोना नही है। तृणों की शय्या पर सोता है परन्तु राजयोगी नहीं है। अर्थात् आम।

वृक्षाग्रतासी न च राजहंसो
नारी तु नाम्ना न च राजकन्या
बिभर्ति तोयं न च देवगङ्गा
त्रिनेत्रधारी न च शूल पाणि:

अर्थात् वृक्षों में रहता है, परन्तु राजहंस नहीं है। नाम से नारी है परन्तु राजकन्या नहीं है बीच में पानी है परन्तु भागीरथी नहीं है। तीन नेत्र हैं, परन्तु शंकर नहीं है। अर्थात् नारियल।

का शम्भुकान्ता किमुनेत्ररम्यं
शुकार्भक: किं कुरूते फलानि
मोक्षस्य दाता स्मरणेन को वा
गौरी मुखं चुम्बति वासुदेव:

अर्थात् शिव की स्त्री कौन ? "गौरी" नेत्रों को रमणीय क्या ? "मुख" तोते के बच्चे फल कों क्या करते हैं ? "चुम्बन" जिस का स्मरण करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है ऐसा कौन ? "वासुदेव,'
प्रथम तीन पत्तियों में प्रश्न हैं चतुर्थ में उत्तर।

का पाण्डुकान्ता गृहभूषणं किं
को रामशत्रु: किमगस्त्य जन्म
क: सूर्यपुत्रो विपरीत पृच्छा
कुन्ती सुतो रावणकुम्भकर्णा:

अर्थात् पाण्डुराजकी स्त्री ? "कुन्ती" घर का भूषण क्या ? सुत (पुत्र)
राम का शत्रु कौन ? "रावण"
अगस्त्य महर्षिका जन्म कहां से ? कुम्भ घड़े
सूर्य पुत्र कौन ? "कर्ण"
प्रथम तीन पंक्तियों में प्रश्न हैं, तथा चतुर्थ पक्ति में उत्तर है।

प्री मेडीकल, एम. एल. एम. कालेल, सुन्दरनगर

चम्बा रूमाल—अष्टनायिका

वठी मभगांव सिरमौर में स्थित रुद्रदेवता का मन्दिर
छायाकार : रमाकान्त जोशी